अध्याय–२

उत्तर हिन्दुस्तानी शास्त्रीय संगीत पद्धति

2.1 श्रुति

'श्रुति' एक संस्कृत शब्द है जो 'श्रु' धातु से निकलता है । 'श्रु' धातु का अर्थ है 'सुनना' और 'श्रुति' शब्द का अथै है 'सुना हुआ' । इस अर्थ के अनुसार किसी भी आवाज को, जो कानों द्वारा स्पष्ट सुनी जा सके उसे श्रुति कह सकते हैं । Any sound that is capable of being distinctly heard by the ear can be called "Shruti".

नादवर्णन से स्पष्ट होता है या बावीस नाडीओं से उत्पन्न हुई श्रवण योग्य २२ नाद ही २२ श्रुतियाँ है। 'अभिनव राग मंजरी' ग्रंथानुसार – वह आवाज जिसका गीत में उपयोग कर सकते है उसे श्रुति कहते है । इसे अधिक समजने के लिए–पहले हमने एक नाद लिया, जिसकी आन्दोलन संख्या १०० कंपन प्रति सेकन्ड है । फिर दूसरा आन्दोलन ले जिसकी आन्दोलन संख्या १०१ कंपन प्रति सेकन्ड है । वैज्ञानिक द्रष्टि से यह दोनों अलग–अलग नाद है किन्तु इनकी कंपन की संख्या में बहुत कम अन्तर है । दुसरे नाद में क्रमानुसार एक–एक कंपन अलग–अलग स्पष्ट पहचान सकते है । इस आधार पर विद्वानोंने श्रुति की परिभाषाएँ दी है जिस से नाद एक दूसरे से स्पष्ट पहचाने जाये उसे 'श्रुति' कहते है ।[1]

वह नाद जिसे हम स्पष्ट रूप से सुन सकें, समझ सकें तथा किन्ही दो नादों के बीच का अन्तर बता सकें, **श्रुति** कहलाता हैं । हमारे शास्त्रकारों ने ठीक ही कहा है, **श्रुयते इति श्रुतिः** अर्थात् श्रुति वह है जिसे हम सुन सकें । सुनने का तात्पर्य केवल सुनना ही नहीं, बल्कि सुनकर समझ लेना भी है ।

शास्त्रकारों के बाईस श्रुतियों के बीच इतना अन्तर माना है कि २३वीं श्रुति पहली श्रुति से ठीक दुगनी ऊँचाई पर रहे, क्योंकि २३वीं श्रुति से दूसरा सप्तक प्रारम्भ हो जाता है । इस प्रकार नाद तो असंख्य है, किन्तु श्रुतियाँ केवल २२ हैं । दूसरे शब्दों में प्रत्येक श्रुति नाद है, किन्तु प्रत्येक नाद श्रुति नहीं है, केवल २२ नाद ही श्रुति हैं । इसलिये संगीत में अधिकतर श्रुति शब्द प्रयोग होता है, नाद नहीं ।

---

1. वसंत / संगीत विशारद / पृ. 35

2.1.1 श्रुति की परिभाषाएँ

श्रुति शब्द की व्युत्पत्ति को ग्रंथकारोंने भिन्न-भिन्न प्रकारों में दर्शाई है ।

प्राचीन ग्रंथकारोंने अपने ग्रंथों में श्रुति की परिभाषा दर्शाते हुए लिखा है – श्रुयते ईति श्रुतिः। जो ध्वनि सुन सकते है उसे श्रुति कहते है । जिस आवाज का गीतों में प्रयोग होता है और एक-दुसरे से अलग-अलग स्पष्ट रूप से पहचाना जाए उस आवाज को 'श्रुति' कहते है ।

श्रुति की परिभाषा प्राचीन संगीत ग्रन्थकार भी लगभग इसी प्रकार करते है :-

श्रवणैन्द्रिय ग्रह्यत्वाद्ध्वनिरेव श्रुतिर्भवेत् ।[1]

अर्थात् जिस ध्वनि (आवाज) को कान ग्रहण कर सकें, अर्थात् सुन सकें, उसको श्रुति कहते हैं ।

श्रुति की परिभाषा प्राचीन ग्रन्थकार इससे भी सरल रीति से इस प्रकार करते हैं : "श्रुयते इति श्रुति" अर्थात् जो आवाज स्पष्ट सुनाई दे उसे श्रुति कहते हैं । That sound which can be distinctly heard is called 'Shruti'.

श्रुति की उपर्युक्त तीनों परिभाषायें देखने में तो बड़ी सरल मालूम होती है: परन्तु जहाँ तक संगीत का सम्बन्ध है ये तीनों परिभाषायें कुछ अशुद्ध सी प्रतीत होती है । संगीत की दृष्टि से इन तीनों परिभाषाओं में कोई तत्व नहीं है । क्योंकि ऊपर लिखी हुई श्रुति की व्याख्या के अनुसार हम किसी भी आवाज को, जो कानों द्वारा सुनी जा सके, श्रुति कह सकते है । परन्तु संगीत में तो हम केवल संगीतोपयोगी आवाज की ही कल्पना करते हैं और उसी प्रकार की आवाज से ही संगीत का सम्बन्ध है । अतएव, हर एक आवाज को, जो केवल सुनाई दे, श्रुति नहीं कहा जा सकता । इसके अतिरिक्त श्रुतियों में हमेशा 'संगीतपयोगित्व' अर्थात् संगीत में प्रयोग की जानेवाली और 'अभिज्ञेयत्व' अर्थात् एक दूसरे से अलग पहचानी जानेवाली इन दोनों का तत्व रहता है । अत: इस विचार से 'श्रुति' शब्द का अर्थ हमें सीमित करना पड़ेगा । यानी वह आवाज जो संगीत में प्रयोग की जा सके, जो स्पष्ट सुनाई दे और जो एक दूसरे से अलग पहचानी जा सके उसी को श्रुति कहा जा सकता है ।

---

1. मित्र, राजेश्वरी /पं. सारंगदेव कृत संगीत रत्नाकर/ पृ. 34

श्रुति की इस परिभाषा में 'संगीतपयोगित्व' और 'अभिज्ञेयत्व' इन दोनों का तत्व है और संगीत की दृष्टि से श्रुति की परिभाषा में ये दोनों चीज़े होनी भी चाहिए । अतः हम कह सकते हैं कि श्रुति की यह परिभाषा बिल्कुल ठीक है । सारांश यह है कि हम हर एक आवाज़ या नाद को, जो हमें केवल सुनाई दे, श्रुति नहीं कह सकते । हम केवल उसी आवाज़ को श्रुति कहेंगे जो संगीतोपयोगी हो, जो साफ़-साफ़ सुनाई दे और जो एक दूसरे से अलग तथा स्पष्ट पहचानी जा सके ।

इसलिए श्रुति की परिभाषा, संगीत की दृष्टि से, अच्छी तरह समझने के लिए तीन बातों का ध्यान रखना ज़रूरी है :-

(१) आवाज़ संगीतोपयोगी हो,

(२) आवाज़ साफ़-साफ़ सुनाई दे, और

(३) आवाज़ एक दूसरे से अलग तथा स्पष्ट पहचानी जा सके ।

अतः श्रुति की परिभाषा इस प्रकार होगी :-

वह आवाज़ जो संगीतोपयोगी हो, जो साफ़-साफ़ सुनाई दे और जो एक दूसरे से अलग तथा स्पष्ट पहचानी जा सके, 'श्रुति' कहलाती है । दूसरे शब्दों में, जो संगीतोपयोगी आवाज़ स्पष्ट सुनाई देती है और एकदूसरे से अलग तथा स्पष्ट पहचानी जा सकती है उसे 'श्रुति' कहते है ।

Musical sounds which can be clearly heard and distinguished one from the other are called *'Shruttis'*. In other words, every distinct and audible musical sound is called *Shruti*.

श्रुति की परिभाषा समझने के बाद अब यह मालूम होना चाहिए कि हमारे पुराने और नये दोनों ग्रंथकार एक सप्तक में, नीचे के 'सा' से ऊपर के 'सा' तक एक दूसरे से ऊँचे इस क्रम से संगीतोपयोगी मुख्य २२ नाद अथवा २२ श्रुतियाँ मानते हैं और इन्हीं २२ श्रुतियों पर अपने शुद्ध तथा विकृत स्वरों की स्थापना करते हैं । इस विषय में पुराने और नये दोनों ग्रंथकार एक मत हैं । यही नहीं बल्कि दोनों ग्रंथकार इन २२ श्रुतियों पर तात शुद्ध स्वरों की स्थापना करने के विषय में एक प्रसिद्ध एवं परम्परागत नियम को भी एक मत से स्वीकार करते हैं ।

वह प्रसिद्ध नियम इस प्रकार हैं:

चतुश्चतुश्चतुश्चैव षड्जमध्यमपंचमाः ।

द्वे द्वे निषादगांधारौ त्रिस्त्री ऋषभधैवतौ ॥

– श्री मल्लस्य संगीतम्

अर्थात् षड्ज, मध्यम और पंचम ये तीन स्वर चार–चार श्रुतियों के, निषाद और गांधार ये दो स्वर दो–दो श्रुतियों के और ऋषभ तथा धैवत ये दो स्वर तीन–तीन श्रुतियों के हैं ।[1]

''प्राचीनकाल, मध्यकाल और आधुनिक काल के ग्रंथकारों ने श्रुति की संख्या २२ मानी है और ७ स्वरों में श्रुति का विभाजन सर्वानुमते किया है ।''

श्रवणार्थस्य धातोः क्ति प्रत्ययेय सुसंश्रिते ।

श्रुति शब्द प्रसाध्योडयं शब्द ज्ञैः कर्मसाधनेः ॥८२॥ [2]

अर्थात् 'श्रु' धातु जो सुनने के अर्थ में है उसे 'क्ति' प्रत्यय लगाने से श्रुति शब्द बनता है ।

''श्रवणाकच्छ्रूतयो मताः''[3]

– संगीत रत्नाकर, पृ.६७, श्लोक–८२

अभिनव तथा शारंगदेव ने श्रुति की एक और परिभाषा बताई है – तन्त्री पर आघात करने से प्रथम क्षण में सुनाई देती ध्वनि 'श्रुति' है –

अभिधातजातजाशब्दात् अनंतरं यः अनुरंण लक्षणः ।

शब्दः उपजायते, स तावन् निसर्ग स्निग्ध–मधुराकारः ॥[4]

नाट्यशास्त्र, पृ.१२, भाग–४

फोकस स्ट्रग्वेज ने 'श्रुति' को सिर्फ श्रवण योग्य सूक्ष्म ध्वनि ही नहीं कहा है किन्तु ऐसी निश्चित श्रवण योग्य ध्वनि जो एक–दुसरे से अलग पहेचान सके उसे श्रुति कहते है । उसके ग्रंथ 'Music of Hindoostan' में इस प्रकार वर्णन कीया है ।

---

1. निगम, वी. एस. / संगीत कौमुदीनी भाग–३ / पृ. 1
2. मिश्र, पं. श्यामदास / राग एवम् शास्त्र / पृ. 3
3. मित्र, राजेश्वरी / पं. सारंगदेव कृत संगीत रत्नाकर / पृ. 67
4. शुक्ल शास्त्री, बाबुलाल / भरतमूनि कृत नाट्यशास्त्र भाग–४ / पृ. 12

2.1.2 श्रुति – स्थूल रूप

प्रत्येक विषय अपने सर्वांगीण रूप में गहन भी होता है और व्यापक भी । यह तभी विदित होता है जब उस विषय पर विस्तृत मनन और चिन्तन किया जाता है । शीर्षक के रूप में कोई भी विषय साधारणत: उतना ही छोटा प्रतीत होता है जितना एक बीज । जिस प्रकार एक नन्हें–से बीज में विशाल वृक्ष में रूपायित होने की अद्‌भुत क्षमता होती है उसी प्रकार छोटे–से छोटे शीर्षक वाला विषय भी अपने आप में पर्याप्त विविधता लिए होता है । नाद का लघुत्तम अंश श्रुति उपर्युक्त विषयगत विवेचन का सजीव प्रमाण है । विभिन्न विद्वानों के श्रुति से सम्बन्धित परिभाषाएं निम्न प्रकार से व्यक्त की हैं । अभिधार्थ की दृष्टि से श्रुति शब्द 'श्रु' धातु के साथ क्तिन प्रत्यय की संलग्नता से बनता है :–

"श्रु श्रवणे चास्य धातोः क्क्त–प्रत्यय–समुद्‌भवः ।

श्रुति शब्दः प्रसाध्योऽयं शब्दज्ञैर्भाव साधनः ॥"

– मतंग–बृहदेशी, श्लोक–२४

विश्वावसु के अनुसार,

"श्रवणेन्द्रिय ग्राह्यत्वात्‌ ध्वनिरेव श्रुतिर्भवेत्‌ ।"

– बृहदेशी, श्लोक–२६

इससे भी तथाकथित अर्थ आभासित होता है कान जिस लघु ध्वनि को ग्रहण करें और अन्य समीपवर्ती नादांशों से पृथक्‌ता का भान कराएं ।

"इति ध्वनि विशेषास्ते श्रवणाच्छ्रुति–संज्ञिताः"

दत्तिल–दत्तिलम–श्लोक ९

दत्तिल की धारणा विश्वावसु और मतंग से तनिक भी भिन्न नहीं है ।

"श्रुति स्थानाभिघात प्रभवशब्द प्रभावितो अनुरणनात्मा

स्निग्ध मधुरः शब्द एव स्वर इति वक्ष्यामः ।" [1]

अभिनवगुप्त – नाट्‌यशास्त्र

1. अभिनवगुप्त / अभिनव भारती / नाट्‌यशास्त्र–28 / पृष्ठ 11

अभिनवगुप्त ने यद्यपि स्वर और श्रुति को एक साथ परिभाषित किया है तथापि इसमें श्रुति के सम्बन्ध में उनकी निजी मान्यता का बोध भी हो जाता है । उनके अनुसार निश्चित स्थान पर वायु के आघात से उत्पन्न लघु नादांश श्रुति है । श्रुति के शब्दार्थ 'कान' की भूमिका का उल्लेख उन्होंने नहीं किया है । यह लघु सूत्रमूलक श्रुति सम्बन्धी दृष्टिकोण व्युत्पत्तिमूलक है । भाव यह है कि जिल लघु ध्वनि को कान ग्रहण करें वह श्रुति है ।

एक अन्य स्थान पर उन्होंने श्रुति और स्वर का समन्वित रूप प्रस्तुत किया है जो इस अर्थ से पूर्णरूप से मिला हुआ–सा प्रतीत होता है –

श्रुत्यनन्तरभावी यः स्निग्धोनुरणनात्मकः

रचतो रञ्जयति श्रोतृचितं स स्वर उच्यते ॥[1]

शार्ङ्गदेव– संगीत रत्नाकर

श्रवणगोचर लघु ध्वनि श्रुति तो है किन्तु बिना अन्तराल के जब उसमें अनुरणन आ जाता है तो वही स्वर बन जाती है । अनुरणन तभी होगा जब पहले रणन होगा । नाद के लघु अंश में पहले रणन होता है, जब इसी की आवृत्ति होती है तो वह स्वर बन जाता है । श्रुति और स्वर के परस्पर अति सामीप्य के कारण कदाचित् शार्ङ्गदेव ने उसकी स्वतन्त्र या अभिधार्थमूलक परिभाषा की आवश्यकता अनुभव नहीं की होगी ।

नान्यदेव और राणा कुम्भा की श्रुति सम्बन्धी धारणाएं शार्ङ्गदेव और अभिवगुप्त से मेल खाती हैं, इसीलिए उनका स्वतन्त्र रूप से विवेचन करता आवश्यक प्रतीत नहीं होता ।

श्रुतिः श्रूयत इत्येवं धवनिरेषोऽभिधीयते ।

श्रुणोतेः कर्म–विहिते प्रत्यये क्तिनी जायते ॥ (८२)

नान्यदेव–भरतभाष्यम्

त एव ध्वन्यस्त्र, श्रवणात् श्रुति संज्ञिकाः ।

श्रुणोतेः श्रवणार्थस्य भावे क्तिः प्रत्यये श्रुतिः ॥

महाराणा कुम्भकरण–संगीतराज

इन परिभाषाओं से श्रुति के उस महत्व का बोध नहीं होता जिसे संगीतकारों ने स्वर को उत्पन्न करनेवाला लघुतम नादांश माना है । इनमें से शार्ङ्गदेव की परिभाषा श्रुति के रूप–विधान पर

1. बर्वे, गणपतराव गोपालराव / गायन–वादन पाठशाला भाग–२ / पृ. 249

कुछ अधिक प्रकाश डालती है । श्रुति की 'श्रुत्यनन्तर' भी विवेचना की दृष्टि से काफी महत्त्वपूर्ण है । लगता है कि इस मनीषि ने संगीत की तात्त्विक रूपरेखा को सम्मुख रखकर श्रुति का कुछ अधिक स्पष्टीकरण किया है ।[1]

2.1.3 श्रुति में साम्य

व्याकरण हो या संगीत, दोनों में निकट सम्बन्ध अनादिकाल से रहा है । इसका मूल कारण है – दोनों में स्वर की प्रधानता । व्याकरण में स्वर सबसे महत्त्वपूर्ण है और संगीत तो स्वर के बिना अस्तित्वहीन ही कहा जा सकता है । जिस स्वरत्रयी को सामगान का मूल आधार माना जाता है वही तीनों स्वर व्याकरण में भी आधार स्तम्भ के रूप में स्वीकृत हुए है । इन तीनों स्वरों उदात्त, अनुदात्त और स्वरित को जिन अलग–अलग सम्बोधनों के रूप में व्यवहृत किया गया है, वे हैं – एक श्रुति, तान और प्रचय । व्याकरणशास्त्रियों ने विशेष रूप से एक श्रुति और प्रचय पर अधिक विचार किया है । उदात्त, अनुदात्त और स्वरित इन तीनों स्वरों का एक श्रुति अर्थात् एकतार श्रवण हो, पृथक्–पृथक् सुनने में न आवें, ऐसा उच्चारण करना चाहिए । इसका भाव यह है कि तीनों के उच्चारण में प्रयत्नगत समानता होनी चाहिए । पृथक्–पृथक् सुनाई न देने से यही अभिप्राय निकलता है । प्रचय, एकश्रुति या तान उच्चारण से पूर्व होने वाले प्रयत्न कहे जा सकते हैं । इन तीनों का प्रयत्न सम्बन्धी वैशिष्ठ्य कैसा हो सकता है, इस सम्बन्ध में प्राचीन व्याकरणाचार्य मतैक्यरहित हैं । कुछ व्याकरणशास्त्रियों ने प्रचय और स्वरित में उदात्त और अनुदात्त के स्वरूप की विद्यमानता पर भी विचार किया है और इस सम्बन्ध में भी उनके न्यूनाधिक मतभेद हैं ।[2]

एक वर्ग ऐसा भी है जो एकश्रुति में केवल उदात्त की विद्यमानता स्वीकार करता है । व्याकरण में 'श्रुति' शब्द की जिस रूप में विद्यमानता मिली है, लगभग वैसा ही अर्थ संगीत में भी लिया गया है । नाद के जिन लघु रूपों को 'श्रुति' की संज्ञा से सम्बोधित किया गया है वे भी अपनी स्वतन्त्र पहचान के लिए परस्पर उत्तार–चढ़ाव पर निर्भर करते हैं । यही व्याकरण और संगीत में 'श्रुति' शब्द के प्रयोग की मूलभूत समानता है ।

---

1. चौधरी, सुभाषरानी / संगीत के प्रमुख शास्त्रीय सिद्धांत / पृ. 18-19
2. चौधरी, सुभाषरानी / संगीत के प्रमुख शास्त्रीय सिद्धांत / पृ. 25

2.1.4 श्रुति संख्या

सबसे पहले विचारणीय बात यह है – श्रुतियाँ केवल बाईस ही क्यों ? उससे न्यूनाधिक क्यों नहीं मानी गई । यद्यपि आज के कुछ शोधकों ने इसका सम्बन्ध न्याय, सांख्य, मीमांसा, वेदान्त और योग इन दर्शनों से जोड़ा है, कुछ लोग 'बाईस' की वैज्ञानिकता का सम्बन्ध उपनिषदों से भी जोड़ते हैं, ये सारी सम्भावनाएं अपने आप में ठीक होते हुए भी इन पर प्रश्नचिह्न लगाया जा सकता है कि किसी भी प्राचीन संगीतशास्त्री ने किसी भी दर्शन का तद्विषयक आधार स्वीकार क्यों नहीं किया । इड़ा, पिंगला, सुषुम्ना आदि नाड़ियाँ, मूलाधार आदि चक्र ये सभी योगदर्शन से सम्बद्ध हैं । इसी के आधार पर उन्होंने यह कहा है कि सुषुम्ना से संलग्न चिरछे आकार की ऐसी बाईस नाड़ियाँ हैं जिन पर वायु के दबाव से आरोहमूलक क्रम से मनाक् उच्च बाईस ध्वनियों का प्रादुर्भाव होता है । सम्भवतः इसी से प्रभावित होकर आज के कुछ विचारकों ने सांख्य आदि दर्शनों के सिद्धांतो से इस मूल बाईस ध्वनियों के सम्बन्ध की कोशिश की है । लेकिन वस्तुतः संगीत एक स्वतन्त्र कला के रूप में अस्तित्व में आई है । उसका स्वरूप किसी भी दर्शन से अनुप्रेरीत होकर निर्मित नहीं हुआ । जो सार्वभौम सत्य होते हैं वे स्वतः ही परस्पर जुड़ जाते हैं । इस दृष्टिकोण के अनुसार यदि सांख्य, न्याय आदि दर्शनों से इन श्रुतियों का सम्बन्ध अनुमानित हो जाए तो यह एक स्वाभाविक मिलन है । यद्यपि शार्ङ्गदेव की पूर्व निर्दिष्ट मान्यता योगदर्शन से प्रभावित प्रतीत होती है तथापि स्वयं शार्ङ्गदेव ने भी इसका कोई स्पष्ट संकेत नहीं दिया ।

यदि दार्शनिक मान्यताओं को सम्मुख रखकर श्रुति–स्वर आदि पर विचार किया गया होता तो कोहल आदि कुछ ऐसा न कहते –

द्वाविंशाति केचिदुदाहरन्ति श्रुतीः श्रुतिज्ञान विचारदक्षाः ।

षट्षष्टिभिन्नाः खलु केचिदासामानन्त्यमन्वे प्रतिपादयन्ति ॥

मतंग–बृहदेशी

'अर्थात् मीमांसा द्वारा जिनकी बुद्धि परिपुष्ट हो चुकी है; ऐसे कई विद्वान बाईस श्रुतियाँ मानते हैं, कोई छियासठ मानते हैं और कोई उनको अनन्त मानते हैं ।[1]

1. चौधरी, सुभाषरानी / संगीत के प्रमुख शास्त्रीय सिद्धांत / पृ. 20

पं. ओंकारनाथ ठाकुर का यह मानना कि प्रत्येक दो श्रुतियों के बीच तीन-तीन नाद भेद हो सकते हैं, यह कल्पना का ही विषय है । वे स्वयं भी इस तर्क से पूर्णतः आश्वस्त प्रतीत नहीं होते 'ऐसा भी किसी-किसी का मत है' यह कथन इसकी पुष्टि करता है । "आज भी हम तानपूरा या वीणादिक तन्तु वाद्यों को मिलते समय बाईस श्रुतियों के अतिरिक्त सूक्ष्मतर ध्वनियों का भी अनुभव करते हैं । षडज-षडज, षडज-पंचम, षडज-मध्यम इत्यादि के तार मिलाते समय श्रुतियों से भी सूक्ष्मतर ध्वनि का अन्तर हम प्रत्यक्ष रूप से सुन पाते हैं और उन तारों के बीच की विसंवादिता हम दूर करते हैं । इन्हीं सूक्ष्म ध्वनियों का मींड़ में, घसीट में गायक-वादक प्रयोग करते हैं । सम्भवतः इन्हीं सूक्ष्म ध्वनियों को लक्ष्य करके 'अन्तःश्रुतिविवर्तिन्यों' कहा गया हो और इस प्रकार दो श्रुतियों के बीच के सूक्ष्मान्तर को सूचित किया गया हो । ऐसी सूक्ष्म ध्वनियाँ एक से दूसरी श्रुति के बीच में तीन-तीन मानने से (22X3=66) छियासठ संख्या सिद्ध हो जाती है और कोहल का वचन सार्थक सिद्ध हो जाता है ।"[(1)]

यह ठीक है कि तानपूरा आदि तन्तुवाद्यों को मिलाते समय बहुत से अतिसूक्ष्म नाद सुनाई पड़ते हैं । इनसे श्रुतियों की अनन्तता वाले सिद्धांत की पुष्टि होती है । वैज्ञानिक रूप से भी ध्वनि की सूक्ष्मता प्रमाणित हो चुकी है, इस सब कुछ के होते हुए भी बाईस श्रुतियों वाली धारणा शताब्दि दयों पहले से ही एक अन्तिम सत्य के रूप में स्वीकृत हो चुकी है, इसे चाहे आप किसी से भी जोड़े, किसी भी दर्शन से सम्बद्ध करें, यह एक चिन्तन-प्रक्रिया है । श्रुतियाँ बाईस ही होनी चाहिए या नही, इस पर और अधिक विचार करना कोई विशेष लाभदायक नहीं हो सकता ।

एक सप्तक में बाईस श्रुतियों का सिद्धांत नारद से भी पहले स्वीकृत हो चुका था । भरत ने अपनी इन्हीं पूर्व प्रचलित धारणाओं के आधार पर एक सप्तक में बाईस श्रुतियों की पुष्टि की है । इनके पश्चात् थोड़ा-बहुत विचार करते हुए भी मतंग आदि ने अन्तिम रूप से बाईस श्रुतियों वाले दृष्टिकोण को स्वीकार किया है । शार्ङ्गदेव तक आते-आते श्रुति एक शास्त्रीय सत्य बन गई । इसी कारण शार्ङ्गदेव ने सबसे पहले सूत्ररूप में इसका सैद्धांतिक स्वरूप या परिभाषा निर्धारित करी दी । यही नहीं उन्होंने बाईस श्रुतियों को नाम भी प्रदान किये । एब बात और विचारणीय यह है कि

1. प्रणव भारती / पं.ओंकारनाथ ठाकुर / पृ. 40

'अन्तः श्रुतिविवर्तिन्यों' से क्या सर्वमान्य भाव ग्रहण किया जा सकता है । इसमें कोई सन्देह नहीं कि रागों के निजी स्वर लगाव के अनुसार विशेष रूप से विकृत स्वर अपना स्वतन्त्र बना लेते हैं । उनका यह स्वरूप उतरा हुआ या चढ़ा हुआ होता है ।

2.1.5 श्रुति में असाम्य

जब भी उस श्रुति सम्बन्धी लघु नाद रूप को प्रयोग में लाया गया तो उसका श्रुतित्व स्वर रूप में स्वीकारा गया । इस प्रकार ये श्रुतियाँ परस्पर किन अन्तरालों पर स्थित हैं, इनकी परस्पर दूरी कितनी है, इस विषय में परोक्ष रूप में तो सारणा चतुष्टयी के व्यवहार से ही माना जा सकता है लेकिन प्रत्यक्ष रूप में वर्तमानयुगीन विद्वानों ने ही इसके सम्बन्ध में स्वतन्त्र चिन्तन आरम्भ किये । आचार्य बृहस्पतिने सेवर्ट पद्धति के नवीन नाप को लेकर सैद्धांतिक रूप से तीन अन्तराल निर्धारित किये और उनके अनुसार श्रुतियों की सबसे अधिक–उससे कुछ कम और सबसे कम दूरी वाले सिद्धांत का प्रतिपादन किया है । इस सम्बन्ध में भरत द्वारा नामांकित प्रमाणश्रुति को आधार माना है उनका यह भी मानना है कि हर शुद्ध स्वर जिस भी श्रुति पर स्थापित किया गया है वह प्रमाण श्रुति है । उसकी दूरी अन्य श्रुतियों से बहुत कम है ।[1] उनके अनुसार षडज, मध्यम, पंचम इन तीन चतुःश्रुतिक स्वरों की दो–दो प्रमाण श्रुतियाँ हैं, इस प्रकार कुल प्रमाण–श्रुति संख्या दस हो जाती है । शेष बारह श्रुतियों को दूरी के अनुसार दो भागों में बाँटा गया–महती और उपमहती । महती–सात और उपमहती – पाँच । अन्यत्र आचार्य बृहस्पति ने इन्हें प्रमाण श्रुति – 'ग', उपमहती–'क' और महती–'ख' इन सम्बोधनों से निर्दिष्ट किया है । श्री ललित किशोर सिंहने सेबर्ट सिद्धांत के अतिढ रिक्त गणित के मापदण्ड देकर इन तीन श्रुति रूपों को और अधिक स्पष्ट प्रतिपादित किया है । इससे यह सिद्ध हो जाता है कि भरत श्रुतियाँ असमान दूरी पर थीं लेकिन यह असमानता भी सुनियमित और वैज्ञानिक है ।यही श्रुतियों की असमान अथवा विषम प्रमाण सम्बन्धी वैज्ञानिकता है ।

1. चौधरी, सुभाषरानी / संगीत के प्रमुख शास्त्रीय सिद्धांत / पृ. 20

2.1.6 श्रुति–जाति

श्रुति–जाति एक स्वतन्त्र विषय है फिर भी इसका संक्षिप्त विवेचन यहाँ प्रस्तुत करना सयुक्तिक लगता है । श्रुति एक लघु नादरूप है, यह बात पूर्व प्रतिपादित विभिन्न विद्वानों की परिभाषाओं में भी विद्यमान है । अलग–अलग श्रुतियों से पाँच प्रकारों से एक पहचान बनाने की प्रक्रिया – ये पाँच जातियाँ कही जा सकती हैं । हर विषय की जब सूक्ष्म विवेचना होती है तो उसके कुछ अन्तिम निष्कर्ष बनते हैं, उनको वैज्ञानिक तथ्य कहा जा सकता है । इन नादरूपों की पाँच स्वतन्त्र जातियाँ इसी का सुपुष्ट प्रमाण हैं । इनका आध्यात्मिक महत्व भी है और व्यावहारिक भी ।

यहाँ यह बात पहले से स्पष्ट की जा रही है कि प्रत्येक स्वर की श्रुतियों का अलग–अलग जातियों से सम्बन्ध है जो सचित्र प्रस्तुत किया जा रहा है । तत् सम्बन्धी यह दृष्टिकोण संगीत रत्नाकर से ग्रहण किया गया है । चतुः श्रुतिक षडज, मध्यम, पंचम वाले प्रत्येक स्वर की चार श्रुतियाँ अलग–अलग जातियों से सम्बन्ध रखती हैं । इसी प्रकार तीन श्रुतियों वाले ऋषभ धैवत की तीनों श्रुतियों की जातियाँ भी भिन्न हैं । दो–दो श्रुतियों वाले गान्धार–निषाद पर भी यही धारणा लागू होती है । एक और ध्यान देने की बात यह है कि केवल षडज मध्यम की चारों श्रुतियों में जातिगत समानता मिलती है ।

संगीत रत्नाकर के अनुसार श्रुति जातियों की सप्त स्वरों में व्यवस्था

स्वरनाम	श्रुति संख्या	श्रुति नाम	श्रुति जाति
	1	तीव्रा	दीप्ता
	2	कुमुद्वती	आयता
	3	मन्दा	मृदु
षडज	4	छन्दोवती	मध्या
	5	दयावती	करूणा
	6	रंजनी	मध्या
ऋषभ	7	रक्तिका	मृदु
	8	रौद्री	दीप्ता

1. चौधरी, सुभाषरानी / संगीत के प्रमुख शास्त्रीय सिद्धांत / पृ. 27

स्वरनाम	श्रुति संख्या	श्रुति नाम	श्रुति जाति
गान्धार	9	क्रोधा	आयता
	10	वज्रिका	दीप्ता
	11	प्रसारिणी	आयता
	12	प्रीति	मृदु
मध्यम	13	मार्जनी	मध्या
	14	क्षिति	मृदु
	15	रक्ता	मध्या
	16	संदीपनी	आयता
पंचम	17	आलापिनी	करूणा
	18	मदन्ती	करूणा
	19	रोहिणी	आयता
धैवत	20	रम्या	मध्या
	21	उग्रा	दीप्ता
निषाद	22	क्षोभिणी	मध्या [1] .

दीप्ता जाति में चार, आयता जाति में पाँच, करूणा जाति में तीन, मृदु जाति में चार तथा मध्या जाति में छः श्रुतियाँ हैं । इन जातियों की सैद्धांतिक विशेषताओं पर भी विचार किया गया है । आध्यात्मिक दृष्टि से भी इनका मूल्यांकन हुआ है । विचारकों का तो यहाँ तक मत है कि ये सभी भावात्मकता और रसात्मकता से भी सम्बद्ध हैं । निस्सन्देह प्राचीन विद्वानों का कोई भी कार्य गहन चिन्तन और मनन पर आधारित रहा है अतः श्रुति–जाति के सम्बन्ध में भी ये सभी दृष्टिकोण अवश्यमेव विचारणीय हैं ।

शोधकर्ताने शोध करने के बाद यह जाना कि, श्रुति हो या स्वर, उस नाद के लघु अंश है जिसकी महिमा का गान व्याकरण, योग, दर्शन, तन्त्र, मन्त्र और संगीत आदि सभी द्वारा अनादिकाल से होता चला आ रहा है । फिर भी इसका अन्त अनन्त बना हुआ है । यहाँ संक्षेप में इनकी पहचान के कारणों का विवरण प्रस्तुत किया जा रहा है – बाईस नादरूपों के जो सम्बोधन दिये गए हैं, वे भी

सार्थक हैं और उसी सार्थकता के कारण उन्हें जातियों में विभक्त किया गया है । यहाँ उदाहरण स्वरूप दीप्ता जाति से सम्बद्ध चार श्रुतियों की सार्थकतागत भावात्मक एवं दार्शनिक चर्चा की जा रही है – दीप्ता जाति की चार श्रुतियाँ हैं – तीव्रा, रौद्री, वज्रिका, उग्रा । इन चारों में एक स्थूल भावात्मक समानता है लेकिन तत्वतः इनमें प्रतिक्रिया सम्बद्ध कुछ ऐसे भेद हैं जो दार्शनिक दृष्टि से अपना महत्व रखते हैं । जितनी भी प्राचीन सामग्री उपलब्ध है, उसको आधार बनाकर श्रुति–जाति पर विस्तार से विचार किया जा रहा है । ऐसा करने से दो महत्वपूर्ण तथ्यों पर सुन्दर प्रकाश डाला जा सकता है – (१) श्रुतियों के नाम की सार्थकता – जो ध्वनि के वैज्ञानिक चिन्तन का परिणाम है । (२) श्रुतियों को जातियों में विभाजित करना यह केवलमात्र स्थूल तथ्य नहीं है । हर जाति की सम्बद्ध श्रुतियों को ध्यान में रखकर उनके विचार एवं भावपक्ष का सविस्तार विश्लेषण किया जा सकता है । विषय के अनुसार श्रुतियों के सम्बन्ध में परम्परा से चली आ रही धारणाएं समय–अनुकूल किस प्रकार परिवर्तित होती आई हैं और आज के संदर्भ में शास्त्रकार इन श्रुतियों के प्रयोगवादी रूप का किस प्रकार आकलन करते हैं, यही विवेचन का विषय है ।

प्राचीन और मध्यकालीन ये दोनों ग्रंथकार अपना षड्ज चौथी श्रुति पर, ऋषभ सातवीं श्रुति पर, गांधार नवीं श्रुति पर, मध्यम तेरहवीं श्रुति पर, पंचम सत्रहवीं श्रुति पर, धैवत बींसवीं श्रुति पर और निषाद बाईसवीं श्रुति पर स्थापित करते हैं ।[(1)]

वेदाचलांकश्रुतिषु त्रयोदश्यां श्रुतौ तथा ।

सप्तदश्याँ च विश्यां च द्वाविंश्यां च श्रुतौ क्रमात् ॥

श्रुतियाँ सात शुद्ध स्वरों में इस क्रम से बांटी गई हैं कि षड्ज चौथी श्रुति पर, ऋषभ सातवीं पर, गांधार नवीं पर, मध्यम तेरहवीं पर, पंचम सत्रहवीं पर, धैवत बीसवीं पर और निषाद बाईसवीं श्रुति पर स्थित है ।

परन्तु इसके विपरीत आधुनिक संगीत ग्रंथकार अपना षड्ज पहली श्रुति पर, ऋषभ पांचवीं श्रुति पर, गांधार आठवीं श्रुति पर, मध्यम दसवीं श्रुति पर, पंचम चौदहवीं श्रुति पर, धैवत अठारवीं श्रुति पर और निषाद इक्कीसवीं श्रुति पर स्थापित करते हैं । इस विषय में 'अभिनवरागमंजरी' के

1. पृ. पुण्डरीक, विट्ठल / रागमंजरी / पृ. 4

लेखक पंडित विष्णुनारायण भातखण्डे आधुनिक संगीत ग्रंथकार, इस प्रकार लिखते है :-

षड्जादोनांस्थितिः प्रोक्ता शुद्धाख्या भरतादिभिः ।

हिन्दुस्थानीयसंगीते श्रुतिक्रमविपर्यतः ।

एते शुद्धस्वराः सप्त स्वस्वाद्यश्रुतिसंस्थिताः ॥[1]

'अभिनव रागमंजरी'

भरत इत्यादि के अनुसार श्रुतियाँ सात शुद्ध स्वरों में इस क्रम से बांटी गई हैं कि षड्ज चौथी श्रुति पर, ऋषभ सातवीं पर, गांधार नवीं पर, मध्यम तेरहवीं पर, पंचम सत्रहवीं पर, धैवत बींसवी पर औन निषाद बाईसवी श्रुति पर है । परन्तु आधुनिक हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति में श्रुतियों को सात शुद्ध स्वरों में इस क्रम के विपरीत बांटा गया है और हर एक शुद्ध स्वर अपनी पहली श्रुति पर स्थापित किया गया है ।

इस प्रकार पुराने ग्रंथकारों के 'सा रे ग म प ध नि' से सात शुद्ध स्वर क्रमशः ४, ७, ९, १३, १७, २० और २२ इन श्रुतियों पर स्थित हैं और आधुनिक ग्रंथकारों के 'सा रे ग म प ध नि' ये साथ स्वर क्रमशः १, ५, ८, १०, १४, १८ और २१ इन श्रुतियों पर स्थित है । प्राचीन तथा आधुनिक शुद्ध स्वर स्थानों के देखने से यह मालूम होता है कि सबसे छोटा शुद्ध स्वर दो श्रुतियों का है और सबसे बड़ा शुद्ध स्वर चार श्रुतियों का है । इसलिए यह नियम याद रखने योग्य है कि दो श्रुतियों से कम और चार श्रुतियों से अधिक श्रुतियों का कोई भी शुद्ध स्वर नहीं हो सकता । यह हुई श्रुतियों के अनुसार शुद्ध स्वरों की स्थापना ।

अब रहा श्रुतियों के अनुसार विकृत स्वरों की स्थापना । विकृत स्वरों की स्थापना के विषय में 'चतुश्चतुश्चतुश्चैव.......' इत्यादि इस प्रकार का प्रसिद्ध नियम प्राचीन अथवा आधुनिक किसी भी संगीत ग्रंथ में नहीं मिलता । परन्तु इस लेखक के मतानुसार विकृत स्वरों की स्थापना के लिए एक सरल नियम यह है कि यदि प्रत्येक शुद्ध स्वरों की श्रुति में दो-दो श्रुतियां जोड़ दी जाएं तो उसके बाद वाले विकृत स्वर की श्रुति बिल्कुल ठीक मालूम हो सकती है । जैसे 'सा' जो कि पहली श्रुति पर है उसमें यदि दो श्रुतियां जोड़ दी जाएं तो कोमल 'रे' अथवा विकृत 'रे', जो उकसे

1. भातखण्डे, विष्णुनारायण / अभिनव रागमंजरी / पृ. 3

बादवाला स्वर है, तीसरी श्रुति पर होगा और यही स्थान कोमल 'रे' का है । इसी प्रकार शुद्ध 'म' जो कि दसवीं श्रुति पर है उसमें यदि दो श्रुतियां जोड़ दी जाएं तो तीव्र 'म' यानी विकृत 'म', जो उसके बाद वाला स्वर है, बारहवीं श्रुति पर होगा ।इसी नियम के अनुसार सभी आधुनिक विकृत स्वर स्थापित किए जा सकते हैं ।

यहां पर एक और बात ध्यान रखने योग्य है कि प्राय: सभी ग्रंथकारों ने २२ श्रुतियों में से केवल १२ श्रुतियों पर अपने शुद्ध व विकृत १२ स्वर स्थापित किए हैं । और इन्हीं १२ स्वरों से थाट रचना और फिर राग–रचना की गई है । बाकी १० श्रुतियों का प्रयोग राग में सुन्दरता तथा मधुरता पैदा करने के लिए गमक तथा मींड द्वारा किया जाता है । अत: एक राग में प्रयोग किए जानेवाले वही राग दूसरे राग में श्रुतियों के ही रूप में रहते है ।

2.1.7 श्रुति वैज्ञानिक विश्लेषण

श्रुति और स्वर के सम्बन्ध में वर्तमान युग की नवीन धारणांए इसका प्रमाण हैं । जहाँ एक ओर नाद के विभिन्न अन्तरालों पर पुन: सोचना आरम्भ हुआ है, नवीन वैज्ञानिक आविष्कारों के परिणामस्वरूप जहाँ एक सप्तक में नाद अन्तरालों की संख्या 400 तक पहुँची है, ये सभी बातें परम्परावादी श्रुतिमूल्यों पर फिर से विचार करने पर बाध्य करती हैं । सम्वाद तत्व को ध्यान में रखते हुए उनके गणित मान भी दर्शाये हैं जिनमें चार ऋषभ, तीन गान्धार, इसी प्रकार चार धैवत, तीन निषाद इसका प्रमाण है । गोडबोले श्रुति स्थानों की अनिवार्यता को तो नकारते हैं लेकिन सम्वाद भाव के लिए गणितमानों की अनिवार्यता से इनकार नहीं करते । वे तो श्रुतिक्रम में परिवर्तन के भी सुझाव देते हैं, उनकी ऐसी मान्यताएं भी गणित सापेक्ष हैं । कृपाल्वानन्द कहते हैं कि आज के सप्तक में चौबीस श्रुतियाँ हैं और बाईस श्रुतियों में इन्हें सीमित करना चाहिए, यह अव्यावहारिक दृष्टिकोण प्राचीनता का मोहमात्र है । पं. ओंकारनाथ ने बाईस श्रुतियों को बाईस स्वर कह दिया । श्रुति की जो सर्वप्रथम परिभाषा संगीत में दी गई है और जो श्रुति का व्युत्पत्तिमूलक स्वरूप 'श्रु' और 'क्तिन्' प्रत्यय से बताया गया है, उसका अर्थ नाद के उन सूक्ष्म रूपों का बोधक है जिन्हें श्रोता

के कान सहजता से पहचान लें, उनकी परस्पर दूरी का अनुमान लगा लें । यही बात क्रियात्मक प्रयोंगो के कारण रागों में होने वाले सूक्ष्म स्वरान्तरालों पर भी लागू होती है । ये एक प्रकार से श्रुतिरूप हैं । अन्तःश्रुति की जो चर्चा विद्वानों ने बहुत पहले की थी – उसका अभिप्राय केवल अन्तः श्रुति तक ही सीमित नहीं मानना चाहिए । अन्तः श्रुति मात्र बाईस श्रुतियों में से उनको नहीं माना जा सकता जो शुद्ध स्वरों के मध्य हें अपितु वे सूक्ष्म नाद अन्तराल भी अन्तः श्रुतिरूप हैं । इसके अतिरिक्त इसका यह भी अर्थ निकाला जा सकता है कि दो श्रुतियों के मध्य भी यदि कोई नादरूप कान ग्रहण कर लेते हैं या क्रियात्मक प्रयोगों में सुनने को मिल जाता है तो वह भी एक प्रकार से अन्तः श्रुति रूप है । प्रयोग में श्रुति के मूलरूप इधर–उधर खिसकते रहे होंगे, ऐसी निश्चित सम्भावना की जा सकती है । दूसरी बात यह है कि एक सैद्धांतिक मापदण्ड बनाये बिना उसके प्रयोगों में विविधता हो ही नहीं सकती । कोई भी चीज निराधार नहीं होती । बिना श्रुतिरूप निर्धारित किये प्रयोगों की विविधता का आकलन ही नहीं हो सकता ।

शोधकर्ताने शोधकार्य करने के बाद यह जाना कि, ये मान्यताएँ इस बात के भी स्पष्ट और स्वस्थ शास्त्रीय दिशा–निर्देशों की ओर इंगित करती हैं जो पूर्णतः क्रियासापेक्ष है । यह सैद्धांतिक विवेचन उन मध्ययुगीन विद्वानों से निरन्तर भिन्न है जो निर्धारत परम्परा का पिष्टपेषण करने तक सीमित हो चुके थे । विकृत स्वरों का उल्लेख इन लोगों ने अवश्य किया है लेकिन वे सभी स्वर पूर्व प्रचलित बाईस श्रुतियों पर ही स्थापित हुए हैं । रामामत्य, सोमनाथ, पुण्डरीक, विट्ठल, लोचन आदि अन्य सभी इसी धारणा के समर्थक हैं। सूक्ष्म अन्तरालों की बात उन्होंने नहीं की । इसकी थोड़ी–बहुत चर्चा संगीत–पारिजात में अवश्य हुई है । अहोबल ने बाईस से अधिक स्वर नामों की चर्चा की है लेकिन वे भी बाईस श्रुतियों तक ही सीमित हैं । श्रुति और स्वर में प्रयोगगत भिन्नता का जो उल्लेख उन्होंने किया है, वह ही एकमात्र अन्य विद्वानों से पृथक् विचार कहा जा सकता है । अलंकारो, तानों और गमक प्रकारों का वर्णन 'संगीत पारिजात' में मिलता है । कुछ भी हो आज का सैद्धांतिक चिन्तन क्रिया सापेक्ष नई और स्वतन्त्र विचार प्रक्रिया को लेकर चल रहा है । इसी कारण श्रुति और स्वर के सम्बन्धों की पूर्णतः स्वतन्त्र और मौलिक व्याख्या होने लगी है ।

यहाँ एक ऐसे चिन्तक की मान्यताओं का उल्लेख करना श्रुति सम्बन्धी नवीन धारणाओं को पूर्ण स्पष्ट कर देगा । भारतीय मूल के अमरीका निवासी जयराज भॉय ने इस विषय में अपने मौलिक और सारयुक्त विचार व्यक्त किये हैं । उनका मानना है कि भरत के समय में यद्यपि बाईस श्रुतियों वाला सिद्धांत प्रचलित था तो भी उस समय नवीन नाद अन्तरालों का प्रयोग होते रहने की सम्भावना की जा सकती है । जयराज भॉय ने इसके कुछ कारणों की ओर संकेत किया है । सबसे पहला कारण वे तानपूरे के प्रयोग को मानते हैं । तानपूरे को आधार मानकर गायन–वादन प्रक्रिया से श्रुति निरपेक्ष क्रियात्मकता स्पष्ट ही सम्मुख आ जाती है । इसके अतिरिक्त वे हारमोनियम के प्रवेश को दूसरा प्रमुख कारण बताते हैं । इसके पीछे सम्भवत: वे श्रुति निरपेक्ष होने में अथवा श्रुति निरपेक्षता के कारण सरसता और लालित्य के समावेश में एक अवांछित रूकावट समझते हैं । इसके कुछ यह भी अर्थ लगाया जा सकता है कि उन्हें स्वतन्त्र कलात्मक प्रयोगों से उत्पन्न सरसता अधिक उपयोगी और प्रिय जान पड़ती हैं । जिस श्रुति निरपेक्षता और सापेक्षता के द्विविध रूप का विश्लेषण अब तक करने का प्रयास किया है वह वर्तमान क्रियात्मक प्रयोगों के आधार पर तो बिलकुल सही है । आज के नवीन ध्वनि की सूक्ष्मता को आँकने वाले साधनों के अनुसार तो वह और भी अशक्य रूप हो जाता है । अत: निष्कर्ष रूप में इसमें जो सबसे बड़ा अभाव सम्मुख आता है उसमें मतैक्य का न होना बहुत बड़ी कमी कही जा सकती है ।[1] वास्तव में मापदण्ड या मूल्यांकन के सम्बन्ध में सभी समीक्षकों ने व्यक्तिपरक प्रणालियों का उपयोग किया है । इस प्रकार कोई भी सर्वसम्मत निर्णय नहीं निकाला जा सकता । दूसरी कलाकारों की सूझ में निरन्तर जो नवीनताएं आती जा रही हैं, गायन और वादन के जो नवीन प्रकार पिछले कुछ दिनों में बने हैं, ये सभी एक शास्त्रीय सिद्धांत तक पहुँचने में बहुत बड़ी बाधा कहे जा सकते हैं । इतना तो निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि श्रुति की मूल अवधारणा जो बहुत पहले बन चुकी थी, उसके अभाव में तो यह मौलिक सूझ भी अपना चमत्कार नहीं दिखा सकती थी । स्वर, श्रुति, ग्राम, मूर्च्छना आदि की क्रमिक अवस्था, जातियों और रागों के निर्माण का ठोस और मूल आधार हैं और यही स्वतन्त्र सूझ के अनुप्रेरक भी हैं ।

---

1. चौधरी, सुभाषरानी / संगीत के प्रमुख शास्त्रीय सिद्धांत / पृ. 29

2.1.8 प्राचीन ग्रंथकारों की समान श्रुतियाँ

प्राचीन तथा मध्यकालीन ग्रंथकार अपना हर एक स्वर अन्तिम श्रुति पर स्थापित करते हैं और आधुनिक ग्रंथकार अपना हर एक स्वर पहली श्रुति पर स्थापित करते हैं । यही नहीं, बल्कि इन तीनों ग्रंथकारों में एक अन्य विषय में भी मत–भेद है । वह यह है कि प्राचीन ग्रंथकार अपने स्वरों का परस्पर सम्बन्ध मालूम करने के लिए श्रुति को एक निश्चित नाप स्वीकार करते हैं और अपनी २२ श्रुतियों को समान मानते है; परन्तु मध्यकालीन तथा आधुनिक ग्रंथकार न हो श्रुति को एक निश्चित नाप स्वीकार करते हैं और न ही अपनी श्रुतियों को समान मानते हैं । अब हमें यह देखना है कि प्राचीन ग्रंथकार अपने स्वरों का परस्पर सम्बन्ध मालूम करने के लिए किस प्रकार श्रुति को एक निश्चित नाप स्वीकार करते हैं और किस प्रकार अपनी २२ श्रुतियों को समान मानते हैं ।

प्राचीन काल के आधारित ग्रंथ मुख्य दो हैं : एक श्री भरत का लिखा हुआ 'नाट्यशास्त्र' और दूसरा पं. शार्ङ्गदेव का लिखा हुआ 'संगीत रत्नाकर' । श्री भरतने अपना ग्रंथ 'नाट्यशास्त्र' तीसरी शताब्दी में लिखा और पं. शार्ङ्गदेव ने अपना ग्रंथ 'संगीत रत्नाकर' तेरहवीं शताब्दी के पूर्वार्ध में लिखा । इन दोनों ग्रंथकारों ने अपने अपने ग्रंथ में जो श्रुति–स्वर का वर्णन किया है उससे विदित होता है कि वे अपने स्वरों का परस्पर सम्बन्ध मालूम करने के लिए श्रुति को ही एक निश्चित नाप स्वीकार करते हैं और अपनी २२ श्रुतियों को समान मानते हैं । इन दोनों ग्रंथकारों में से यदि हम केवल श्री भरत के श्रुति–स्वर वर्णन को भली–भाँति समझ लें, तो पं. शार्ङ्गदेव के श्रुति–स्वर वर्णन को भी अच्छी तरह समझ सकेंगे क्योंकि दोनों ग्रंथकार श्रुति–स्वर वर्णन के विषय में एकमत हैं ।(1)

भरत के अनुसार एक श्रुति के नाप का अर्थ होता है 'षड्ज–ग्राम' और 'मध्यम–ग्राम' के 'पंचमो' का परस्पर ध्वन्यन्तर । इसी श्रुति के नाप के श्री भरत ने 'प्रमाण–श्रुति' बताया है और यही है उनकी 'प्रमाण–श्रुति' । भरत स्वयं कहते भी है कि 'मध्यम–ग्राम–वीणा' को 'षड्ज–ग्राम–वीणा' बनाने के लिए इसी प्रमाण–श्रुति के नाप से पंचम के अतिरिक्त शेष सभी छ: स्वरों के तारों को एक–एक श्रुति से उतारो यानी शेष छ: स्वरों को भी एक–एक श्रुति से कम करो । तो ऐसा करना तभी सम्भव हो सकता है जब सब श्रुतियों का परस्पर ध्वन्यन्तर (Interval of Sound) बराबर हो

1. हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति क्रमिक पुस्तिकमालिका भाग–४ / पृ. 21

अर्थात् सब श्रुतियाँ परस्पर समान हों अन्यथा नहीं । इससे सिद्ध होता है कि श्री भरत श्रुति को एक निश्चित प्रमाण अथवा निश्चित नाप स्वीकार कर अपनी सब २२ श्रुतियों को समान मानते थे । दूसरे शब्दों में, उनकी पहली तथा दूसरी श्रुति में जो परस्पर सम्बन्ध अथवा ध्वन्यन्तर (Interval of Sound) था वही सम्बन्ध अथवा ध्वन्यन्तर सप्तक की एक दुसरे के बाद आनेवाली किन्हीं भी दो श्रुतियों यानी दूसरी तथा तीसरी, तीसरी तथा चौथी, चौथी तथा पांचवीं अर्थात् किन्हीं दो श्रुतियों के मध्य का परस्पर सम्बन्ध या ध्वन्यन्तर पहली तथा दूसरी श्रुति के मध्य के ध्वन्यन्तर के समान ही था । He ratio of the first to the second Shruti was equal to the ratio between any two consecutive Shrutis. इस प्रकार उनकी २२ श्रुतियों में एक दूसरे का परस्पर ध्वन्यन्तर समान था और उनकी २२ श्रुतियाँ समान थीं । अतः वह अपनी २२ श्रुतियों को समान मानते थे । The be-lieved in the equality of Shrutis.

कहने का मतबल यह है कि श्री भरत और पं. शार्ङ्गदेव अपने स्वरों का परस्पर सम्बन्ध मालूम करने के लिए श्रुति को ही एक निश्चित नाप अथवा एक निश्चित प्रमाण स्वीकार करते ते और अपनी २२ श्रुतियों को समान मानते थे । इस प्रकार उनका शुद्ध स्वर-सप्तक २२ समान श्रुतियों का था । 'It was a temperad scale of twenty –two equal Shrutis'. ऐसा कोई स्वर- सप्तक, जिसमें श्रुतियाँ असमान हों, भरत अथवा पं. शार्ङ्गदेव का स्वर-सप्तक कदापि नहीं हो सकता । क्योंकि उनका शुद्ध स्वर-सप्तक २२ समान श्रुतियों का होता था । सारांश यह है कि भरत, शार्ङ्गदेव आदि प्राचीन ग्रंथकार अपनी श्रुतियों को समान मानते थे । Thus Bharat, Sharagdeva and other ancient writers believed in Equality of Shrutis.

श्री भरत के श्रुति-स्वर वर्णन से कुछ ऐसा प्रतीत होता है कि श्री भरत के 'श्रुति-सिद्धांतों' का मुख्य आधार सम्भवता पाश्चात्यों के 'ध्वनि-शास्त्र-सिद्धांतो' का ही है यह ऋण चाहे स्वीकार किया जाए या न किया जाए । क्योंकि 'षड्ज-पंचम' एवं 'षड्ज-मध्यम' सम्वाद केवल श्रवण शक्ति से परख कर यानी कानों से सुनकर, गणित का आधार लिए बिना, 'सारण-चतुष्टय' द्वारा स्वरों के बीच में श्रुतियों के बीच में श्रुतियों के बिठाने का भी श्री भरत का 'श्रुति-सिद्धांत' कुछ तर्क संगत नहीं प्रतीत होता । यदि श्री भरतने अपने श्रुति एवं स्वर-सम्वाद को समझने के लिए गणित

का आधार लिया होता तो उसमें निश्तिता आ जाती । केवल कानों के भरोसे स्वर–सम्वाद परख कर वीणा पर स्वर–ग्राम बांधना जचना नहीं । अतएव, यह कहना अनुचित न होगा कि गणित का आधार केवल स्वर–सप्तक प्रस्थापित करने का पाश्चात्यों का 'ध्वनि–शास्त्र–सिद्धांत' श्री भरत के 'श्रुति एवं स्वर–संवाद' के सिद्धांत की अपेक्षा अधिक वैज्ञानिक और तर्क संगत प्रतीत होता है । अत: यह कहना अनुचित न होगा कि श्री भरत के 'श्रुति एवं स्वर–सम्वाद' का मुख्य आधार पाश्चात्यों का 'ध्वनि–शास्त्र–सिद्धांत' ही प्रतीत होता है ।

2.2 स्वर

'स्वर' संगीतकला के साथ ही जन्मा है । 'श्रुति' को उसका कारण कहा जाता है । कुछ लोग उसे स्वर की जननी भी कह देते हैं लेकिन निस्सन्देह 'स्वर' के अस्तित्व की अनुभूति 'श्रुति' से भी बहुत पहले हुई है । 'स्वर' निस्सन्देह संगीतकला के उद्‌भव के साथ ही प्रथमत: अनुभूत हुआ । 'श्रुति' उसके साथ विद्यामान थी । शार्ङ्गदेव की यह धारणा कि नाद के लघु अंश में रणन 'श्रुति' है और अनुरणन 'स्वर' । अनुरणन की यह प्रक्रिया जो 'स्वर' बोधिका है, रणन के बिना कदापि सम्भव नहीं । यह मान्यता इस बात को स्पष्ट करती है कि 'श्रुति' पहले थी और रही है और 'स्वर' बाद में । यह एक संयोग की बात है कि 'स्वर' की ओर ध्यान पहले गया । पाँच तत्व का यह अनूठा सुन्दर शरीर बिना तत्त्वों की पूर्व विद्यमानता के कैसे बन सकता है ? ऐसे उद्धरण यह प्रमाणित करते हैं कि 'श्रुति' का अस्तित्व 'स्वर' के पूर्व था । हमें तो यह मानकर चलना चाहिए कि 'कारण' 'कार्य' के रूप में श्रुति और स्वर परस्पर सापेक्ष हैं । शास्त्रकार पहले किसकी पहचान कर पाता है, यह प्राचीनता और अर्वाचीनता का कारण नहीं है । हमें दोनों की साथ–साथ विद्यामानता को निर्विवाद स्वीकृति देकर सैद्धांतिक प्रक्रिया करनी चाहिए ।

2.2.1 स्वर का प्राकृतिक उद्दभव

किसी भी कला के व्युत्पत्तिमूलक तथ्यों का ज्ञान एक स्वाभाविक उत्सुकता है । प्रकृति और संगीत के अति प्राचीन संसर्ग का उल्लेख स्वाभाविक, अनुरंजक और उपयुक्त प्रतीत होता है । पशु, पक्षी, वायु, जल, आदि विभिन्न ध्वनियों के उत्पादक प्राकृतिक तत्वों से विभिन्न विशिष्ट ध्वनियों का

अनुकरण आदि मानव ने किया होगा ।यह सब अब अत्यन्त स्वाभाविक है । इसके अतिरिक्त शरीर और मन पर होने वाली बाह्य प्रतिक्रियाओं के फलस्वरूप जो संकेतात्मक ध्वनियां मानव मुख से प्रतिध्वनित हुई होंगी, वे भी स्वर के प्रादुर्भाव का कारण हैं । इन सबसे संगीत सम्बन्धी उदय की जो सम्भावनाएं व्यक्त होती हैं, वे मूलतः 'स्वर' विषयक हैं । यदि गहन विचार किया जाए तो 'स्वर' ही तो संगीत का पर्याय है । इसलिए 'स्वर' के साथ जिन पशु–पक्षियों के सम्बन्धों की चर्चा प्राचीन और अर्वाचीन विद्वानों ने की है वह भी एक प्रकार से उपर्युक्त कारणों से जुड़ी हुई है । षडजादि 'स्वरों' से जिन पक्षियों और पशुओं की ध्वनियों का सम्बन्ध जोड़ा गया है उसे इसी कारण न तो कोरी कल्पना कहा जा सकता है और न ही इन विचारों को किसी अन्य दृष्टि से निराधार कहा जा सकता है ।

विद्वानों ने न केवल स्वर रूपों का ही अपितु स्वरान्तराल तथा स्वर संघातों का भी पशु–पक्षियों की ध्वनियों के साथ व्यक्त किया । सर्वप्रथम ललितकिशोर सिंहने अपना मन्तव्य व्यक्त किया है । उन्होंने अपनी कृति 'ध्वनि और संगीत' के पृष्ठ 140-41 में प्राचीन विद्वानों के विचारों पर तो अपनी कोई प्रतिक्रिया व्यक्त नहीं की और न ही विभिन्न पशु–पक्षियों की ध्वनियों से सप्त स्वरों का सीधा सम्बन्ध स्थापित किया । परन्तु उनके अनुसार आरम्भ में मनुष्य को अपने शुद्ध और व्यापक भावों–प्रेम, ईर्ष्या और विजय इत्यादि को अभिव्यक्ति प्रदान करने के लिए स्वर–संघातों के प्रयोग की प्रेरणा पशु–पक्षियों से ही मिली होगी । बाद में जैसे–जैसे मनुष्य का बौद्धिक विकास हुआ, ये शुद्ध और व्यापक भाव जटिल होने लगे, तब भाषा का निर्माण हुआ और मानव की भावाभिव्यक्ति के माध्यम परिवर्तित हो गए । लेकिन पशु–पक्षियों के मध्य स्वर संघात बने रहे । इसी हेतु प्राणियों से सप्तक के स्वरों का सम्बन्ध जोड़ा गया होगा ।[(1)]

श्री ललितकिशोर सिंहने इस सम्बन्ध में डार्विन इत्यादि के विकासवादी सिद्धांतों का आधार लेकर तथा वैज्ञानिक चिन्तन से अनुप्रेरित अनुमानों को सम्मुख रखकर यह प्रमाणित करने का प्रयत्न किया है कि प्रेमादि सरल मनोभावों की अभिव्यक्ति के लिए पशु ही नहीं, मानव भी आरम्भ में स्वर–संघातों का प्रयोग करते रहे होंगे । कदाचित् यही एकमात्र कारण पशु–पक्षियों की ध्वनियों से स्वर साम्य का रहा होगा ।

1. चौधरी, सुभाषरानी / संगीत के प्रमुख शास्त्रीय सिद्धांत / पृ. 36

श्री गोविन्द राव टेंबे ने अपने लेख 'कल्पना और संगीत' में प्राचीन विद्वानों द्वारा आद्य स्वर सप्तक की यह कल्पना बहुतांश सुसंगत तथा तर्क ग्राह्य न मानकर पशु–पक्षियों से साम्य की बात पर विचित्रता का अनुभव किया । निस्सन्देह मानव ने संगीत का विकास किया और नाना स्वर रचनाओं को अपने कंठ से उद्भूत किया । अपनी इसी बौद्धिक क्षमता के आधार पर उसने अपने कण्ठ जन्य इन स्वरों की विभिन्न प्राणियों से सादृश्यता का उल्लेख किया । वस्तुतः इस प्रकार की प्रवृत्तियाँ केवलमात्र श्रद्धा के कारण ही मान्य नहीं हैं, इनमें सार भी अवश्य हो सकता है ।

प्रणव भारती में इस सम्बन्ध में पं. ओंकारनाथ ठाकुर ने जो निष्कर्ष दिये हैं तद्नुसार वह एक चिन्तक भी हैं और श्रृद्धानिष्ठ भी । उनका चिन्तन केवलमात्र श्रृद्धा से अनुप्राणित नहीं है, अपितु उपयुक्त तर्कनिष्ठ और वैज्ञानिक भी है । उन्होंने स्वयं पक्षियों के कंठ से विभिन्न स्वर संघातों, अर्द्ध–अन्तरालों, पूर्ण सप्तक, यहाँ तक कि स्वर–समूहों द्वारा परस्पर प्रश्न–उत्तर करते हुए तथा स्वर समूहों की प्रक्रिया को द्विगुणित होते हुए भी सुना है । उनके अनुसार वैज्ञानिकों के सूक्ष्म निरीक्षण से यह स्पष्ट हो चुका है कि पशु–पक्षी विभिन्न स्वरों द्वारा विभिन्न भावनाओं प्रेम, क्रोध, भय, ईर्ष्या, विजय, उल्लास आदि तथा विभिन्न ऋतुओं में विभिन्न स्वरों का प्रयोग करते हैं । 'इससे यह मानने में कोई अत्युक्ति नहीं कि आदिमानव को सप्त स्वरों की प्रेरणा प्रकृति से ही प्राप्त हुई होगी ।

इधर अनेक विचारक निरन्तर मंथन करके अपने–अपने विचार प्रस्तुत करने में प्रयत्नशील हैं । श्री जी. एच. रानाडे का कथन निस्सन्देह सहुक्तिक है :–

"The cries of birds and beasts – such as the cooing of the cuckoo or the neighing of the horse, were among the principal musical occurrences to catch the fancy of the early artist. From such small and simple beginnings, music in India had grown into a well developed art, as far back as history can reach." **(1)**

भरत के जाति सम्बन्धी सिद्धांत को सम्मुख रखकर उन्होंने ऐसा तर्कसंगत निष्कर्ष निकाला है । यह ठीक है कि भरत से पहले ही नारदीय शिक्षा में इस साम्य का उल्लेख हो चुका था । इतना होते हुए भी षाड़जी आदि शुद्धा जातियों से विभिन्न प्रान्तों का सम्बन्ध जोड़ना और वहाँ के प्राचीन पशु–पक्षी सम्बन्धी राजकीय प्रतिकों का उल्लेख करना वैसे भी ठीक लगता है ।

---

1. Ranade, G.H. / Hindustan Music / 3rd Addition / Page -1

भरतने जिन जातियों का उल्लेख किया है वह उनकी तात्कालिक उपज नहीं है । भरतने स्थान–स्थान पर इसका संकेत भी दिया है । नारदीय शिक्षा में जातियों का उल्लेख हो या नहीं, अन्य पूर्व ग्रंथों में इनके संकेत मिलते हैं । इसीलिए यह प्रतीक वाली धरणा उचित प्रतीत होती है । बिहार, पंजाब, राजस्थान, कन्धार (उस समय भारत का अंग) आदि प्रान्तों के क्षेत्रीय चिह्न क्रमश: मोर, बैल, हाथी और अज थे । श्री आठवले का विचार है कि भरतकालीन जातियाँ वस्तुत: विभिन्न क्षेत्रों की लोकधुनों का परिष्कृत एवं परिमार्जित शास्त्रीय रूप है । 'बिहार प्रान्त की लोकधुनों में काफि, पंजाब में भैरवी, राजस्थान में मांड, कन्धार में यमन, महाराष्ट्र में तिलककामोद आदि इसका प्रमाण हैं ।[1] कला से कोरी कल्पना को जोड़ने की मनोवृत्ति प्राचीन विद्वानों से सर्वथा अनपेक्षित है, ऐसी हमारी मान्यता है ।

2.2.2 स्वर और उसके पर्याय

शब्द अपने मूलरूप में ब्रह्म के सदृश अकेला होता है । विचारक और चिन्तक उसकी प्रकृति के अनुसार जो नाना प्रयोग करते हैं निरूक्त, व्याकरण सम्बन्धी उसके स्वरूप को ध्यान में रखकर जो भावबोध करते हैं, वही उस शब्द के नाना अर्थ बन जाते हैं । इस दृष्टि से यदि अब तक उपलब्ध विभिन्न ग्रंथों में स्वर सम्बन्धी प्रयोगों का आकलन किया जाए तो मुख्य रूप से स्वर के जो विविध भावमूलक अभिप्राय सम्मुख आते हैं, वे इस प्रकार हैं –

स्वर, स्वार, गेह्म, जाति, वर्ण विशेष, यम, सप्त संख्या, उदात्तादि वर्ण धर्म, क्रुष्टादि ।

१–२. **'स्वर' और 'स्वार'** के समभाव के सम्बन्ध में विभिन्न ग्रन्थों में उल्लेख तो हैं किन्तु इनकी व्युत्पित्तिमूलक समानता की चर्चा नहीं है । कात्यायनीय शिक्षा, तैत्तिरीय प्रातिशाख्य, नारदीय शिक्षा, ऋग्वेद–प्रातिशाख्य तथा शतपथब्राह्मण इन सबने 'स्वर' और 'स्वार' के समभाव का समर्थन किया है ।

३. **गेह्म** – तीसरे शब्द 'गेह्म' के सम्बन्ध में केवल प्रयोगात्मक समभाव का उल्लेख है और वह भी केवल शबरस्वामी ने ही इस सम्बन्ध में अपना मत व्यक्त किया है – 'यत्र आर्चिकानी पदानि निवर्तन्ते स्तोभा गेह्माश्चानुयन्ति ..... गेह्मा स्वारा:' इसका सार यह है कि ऋचागान में जो स्वररूप प्रयुक्त होते हैं उन्हें 'गेह्म' भी कहते है ।

1. महेता, आर. सी. / संगीत कला विहार / मई 1981 / पृ. 234

४. **जाति** – जहाँ तक चौथे शब्द 'जाति' का प्रश्न है इसका भाव तनिक भिन्न है । 'स्वर' नाद का एक रूप है और नाद की विविधता अपरिमित है । उसमें परस्पर भिन्नता का बोध कराने का कार्य श्रवणेन्द्रिय करती है । इस उद्देश्य को पूर्ण करने के लिए जिस नादात्मक विविधता का सहारा लेना पड़ता है उसे 'जाति' कहते हैं । जैसे नाना नर–नारियों की, विभिन्न वाद्यों की और अन्य नादोत्पादक प्राणियों की भिन्नता, यह सभी कुछ स्वर अथवा उसके समानार्थक शब्द 'जाति' के ही बोधक हैं । जाति एक प्रकार से स्वयं स्वरों की विविधता का भी बोध कराती है । उनकी उच्च–नीचता का ज्ञान भी इसी के अन्तर्गत मानना चाहिए ।

५. **वर्ण विशेष** – यह स्वर का समानार्थक अवश्य है किन्तु इसका व्याकरण और संगीत दोनों में प्रयोग कुछ भिन्न रीति से हुआ है । संहितोपनिषद् ब्राह्मण, शिक्षाशास्त्र, भरत नाटयशास्त्र, प्रातिशाख्य, ऋक्तन्त्र और कातन्त्र – इन सबमें अ, इ, उ आदि वर्णों के लिएए स्वर शब्द का प्रयोग हुआ है । ऐसा इसलिए क्योंकि ये वर्ण अपने उच्चारण में स्वतन्त्र हैं । इन्हें परस्पर सहयोग की आवश्यकता नहीं यथा –

१. अकाराद्या : स्वरा ज्ञेया औकारान्ताश्चतुर्दश । नाटयशास्त्र 14/8

२. अ इति आ इति स्वारा: । ऋक्तन्त्र 1/2

३. तत्र चतुर्दशादौ स्वरा: । कातन्त्र 1/1/2 [(1)]

संगीत में 'वर्ण' का अर्थ स्वर प्रयोग से है जैसे आरोही वर्ण, अवरोही वर्ण, स्थायी वर्ण, संचारी वर्ण । 'आरोही' नीचे से उच्च का, 'अवरोही' उसका विपरीत रूप, 'स्थायी'–स्वर की स्थिरता और 'संचारी' – स्वर का संचरण ।

६. **यम** – षडजादि स्वरों का 'यम' नाम से उल्लेख किया गया है । यहाँ स्वर समूह के प्रयोगात्मक अभिप्राय का बोध होता है ।

७. **क्रुष्टादि** – क्रुष्टादि सामगान संबंधी नादरूपों को भी स्वर का समानार्थक माना जा सकता है ।

८. **सप्त संख्या** – षडजादि शुद्ध स्वर सात हैं और इन सबको स्वर संज्ञा से सम्बोधित किया जाता है । इस प्रसिद्धि के फलस्वरूप स्वर शब्द 'सप्त संख्या' सूचक भी है । पिंगलसूत्र में आर्य छन्द का लक्षण लिखते हुए स्वर को इसी सात संख्या सूचक अभिप्राय से सम्बोधित किया गया है ।

1. चौधरी, सुभाषरानी / संगीत के प्रमुख शास्त्रीय सिद्धांत / पृ. 41

यथा स्वरा अर्धंचार्यार्धम् (14/1/14/1) अर्थात् जहाँ प्रस्तार में सात गण होते हैं और आधा (साढ़े सात गण), वह आर्या छन्द का आधा भाग होता है ।

९. **उदात्तादि वर्णधर्म** – अमरकोष में उदात्तादि वर्णों के लिए 'स्वर' का प्रयोग किया गया है –

'उदात्ताद्यास्त्रयः स्वराः' ।

ये उदात्तादि वर्ण संगीत के संदर्भ में भी 'स्वर' बोधक हैं और व्याकरण आदि शास्त्रों में तो इन वर्णों को स्पष्टतः 'स्वर' भी कहा गया है ।

2.2.3 स्वर की परिभाषा तथा उनका संक्षिप्त विश्लेषण

वैसे तो हर कलाकार अपनी प्रकृति के अनुसार भावुक होता है, साधारण मानव से कहीं अधिक । उसका यही स्वभाव यथा अवसर उसके भावोद्रेक का कारण बनता है । स्वर वह प्रकाश किरण है जो इस कला की विकास विषयक प्रेरणा है । इसी कारण लगभग सभी संगीत सम्बन्धी शास्त्रकारों ने सबसे पहले स्वर की ही विवेचना की है । ऐतिहासिक क्रम के अनुसार सबसे पहले नाटयशास्त्र में तद्विषयक चर्चा का उल्लेख क्रम प्राप्त है । प्रागैतिहासिक रूप में तो इससे भी पहले नारदीय शिक्षा और पतञ्जलिकृत 'महाभाष्य' में भी स्वर का सूत्रमूलक उल्लेख उपलब्ध है । नारदीय शिक्षा में स्वर के दो रूप हैं – एक ऋचागान सम्बन्धी और दूसरे गन्धर्व स्वर से सम्बन्धित । नारदने क्रुष्टादि सप्त स्वरों का उल्लेख तो किया है लेकिन 'स्वर' की सूत्रमूलक कोई भी धारणा व्यक्त नहीं की । ऐसे ही उन्हों मे साम और गन्धर्व स्वरों के अवरोहमूलक क्रम का उल्लेखमात्र किया है । इसके विपरित पतञ्जलि ने 'स्वर' की ऐसी उपयुक्त परिभाषा प्रस्तुत कि है जिसका भावमूलक अभिप्राय शार्ङ्गदेव आदि परवर्ती संगीतकारों की स्वरमूलक परिभाषाओं में परिलक्षित होता है । पतञ्जलि के अनुसार –

'स्वयं राजते इति स्वरः' ।[(1)]

महाभाष्य

पतञ्जलि का महाभाष्य यद्यपि मूलतः पाणिनी की अष्टाध्यायी का विधिवत् स्पष्टीकरण है लेकिन उन्होंने 'स्वर' की जो धारणा इस वाक्यांश में प्रस्तुत कि है, वह व्याकरण और संगीत दोनों से

1. हिराणी, चंद्रकांत / स्वर से ईश्वर / पृ. 62

ही सम्बद्ध है । यदि विचार किया जाए तो णाणिनी द्वारा निर्दिष्ट उदात्त, अनुदात्त, स्वरितभी संगीत और व्याकरण दोनों से सम्बन्ध रखते हैं । 'स्वर' चाहे व्याकरण का अक्षर विशेष हो अथवा संगीत का मधुर नादांश, दोनों ही अपने स्वरूप में स्वतन्त्र होते हैं, राजित, अनुरंजक और चित्ताकर्षक भी ।

स्वर–प्रयोग परम्परा से भिन्न होने पर उनके क्रम में, उनकी संख्या में वृद्धि की जानी चाहिए, इस बात का समर्थन भी भरत ने परोक्ष रूप से किया है । भरत के सप्तक में सात के स्थान पर नौ स्वर हैं । उन्होंने अन्तर गन्धार और काकली निषाद का भी समावेश किया है । वैसे तो यह एक परम्परा अनुमोदित क्रिया है । सामागान में तीन से सात स्वर हुए थे । भरतने 'स्वर–साधारण' जोड़कर मूल स्वरों में एक नया सुझाव सामने रखा है । ऐसी बातें भरत के 'स्वर–दर्शन' के महत्व को प्रमाणित करती हैं । दत्तिल, मतंग, अभिनवगुप्त, नान्यदेव, इनके अतिरिक्त शार्ङ्गदेव, पार्श्वदेव औरा राणा कुम्भ इन सभी ने अपने–अपने युग के परिप्रेक्ष्य में स्वर की सूत्रमूलक व्याख्याएं की हैं । प्रत्येक परिभाषा परस्पर संलग्न भी है, बहुत कुछ मौलिक और स्वतन्त्र भी ।

'स्वर' शब्द पर विचार करनेवाले अन्य विद्वान् अभिनवगुप्त हैं । इनका समय दसवीं शताब्दी है । इन्होंने 'स्वर' का उल्लेख दो स्थानों पर किया है । पहले में 'स्वर' के मूल स्वरूप का विशेष उल्लेख है –

"श्रुति स्थानाभिघात प्रभव शब्द प्रभावितोऽनुरणनात्मा

स्निधमधुरः शब्द एव स्वर इति वक्ष्यामः "॥[(1)]

स्वर ऐसा नादांश है जो श्रुति के बाद अनुरणित हो, जो रक्ति प्रदायक हो, मधुर हो, वह स्वर है । इसका कुछ और स्पष्टीकरण करते हुए वे अन्यत्र कहते हैं कि स्वर में भावों को उद्वेलित करने की क्षमता होती है–

तेन शब्द स्वभावां चित्तवृत्तिं मध्यस्थतारूपास्वास्थ्यावस्था

परित्याजनेनोपतापयन्तो हृदतातिशयवशात्

स्वतामाक्षिपन्तः स्वविषये अभिधानं कुर्वतः स्वरा इत्युक्ताः । [(2)]

1. अभिनवगुप्त / अभिनव भारती / नाट्यशास्त्र–28 / पृष्ठ 11

2. अभिनवभारती, नाट्यशास्त्र – 28 / पृष्ठ 10

शेष सभी बातें उन्होंने दोनों स्थानों पर समान रूप से कही हैं । दूसरे विवेचन में 'उत्तापन' शब्द का प्रयोग हुआ है, जिसका अभिप्राय है – भावों को उद्वेलित करना । अभिनव गुप्त के पश्चात् सभी संगीतशास्त्रीयों ने, जिन्होंने भी 'स्वर' की कोई परिभाषा बनाई है, स्वर के इन्हीं गुणों का अपनी परिभाषा में उल्लेख किया है ।

पार्श्वदेव द्वारा रचित 'संगीत समयसार' में स्वर की परिभाषा इस प्रकार उपलब्ध होती है –

स्वयं यो राजते नादः स्वरः सः परिकीर्तितः।[(1)]

अर्थात् जो स्वयं शोभित हो, वही स्वर है ।

इन परिभाषाओं को पतञ्जलि की परिभाषा का रूपान्तर मात्र ही कहा जा सकता है ।

संगीत के मर्मज्ञ शार्ङ्गदेव ने स्वर की जो परिभाषा अपने ग्रन्थ संगीत रत्नाकर में प्रस्तुत की है, वह अभिनव गुप्त से बहुत भिन्न नहीं है अपितु विस्तृत विवेचन की द्रष्टि से पर्याप्त संक्षिप्त है –

'श्रुत्यन्तरभावी यः स्निग्धोऽनुरणनात्मकः स्वतो रन्जयति श्रोतृचित्तं स स्वर उच्यते ।'[(2)]

इस परिभाषा के अनुसार स्वर में चार मुख्य गुण हैं :–

१. स्वर श्रुति के अनन्तर उत्पन्न होता हैं ।

२. उसमें अनुरणनात्मकता उत्पन्न होती है ।

३. वह स्वराजित होता है अर्थात् उत्पत्ति की दृष्टि से आत्मनिर्भर है ।

४. श्रोताओं के चित्त का रंजन करता है ।

शार्ङ्गदेव के पश्चात् जिन किन्हीं भी आचार्यों ने स्वर के विषय में अपने विचार व्यक्त किये हैं, उनमें भाषागत मौलिकता के अतिरिक्त और कुछ भी नवीनता नहीं है । हाँ, महाराणा कुम्भ ने 'स्वर' के सम्बन्ध में जो कुछ भी विचार व्यक्त किये हैं उनके लेखक अपनी अभिव्यक्ति में स्वतन्त्र भी है और मौलिक भी ।

---

1. पार्श्वदेव / संगीत समयसार / अध्याय – 5 / श्लोक 16

2. मिश्र, राजेश्वर / पं. शार्ङ्गदेव कृत संगीत रत्नाकर / पृ. 24-25

राजेर्वा रन्जतेर्वापि स्वरतेर्वा स्वरेरथ

रौतेर्वा स्वरशब्दोऽयं निरूक्तः कृष्णभूभुजा ।(1)

संगीत राज

यह परिभाषा अपने में स्वर की सभी अमूर्त विशेषताओं का मूर्त्त समुच्चय है । प्रथम अंश में राजेर्वा अर्थात् चमत्कृत होना । यहाँ चमत्कार का अभिधार्थ दीप्तिमात्र ले लेना पर्याप्त नहीं है अपितु इसका अभिप्राय है – हृदय में वैचित्र उत्पन्न करना । तभी तो स्वर दूसरी विशेषता 'रन्जतेर्वापि' क्रमानुसार एवं अधिक सार्थक प्रतीत होगी । स्वर में रंजन के गुण की विद्यमानता का एक कारण दीप्ति भी है । चमत्कार रंजन होता है । तीसरी–स्वरतेर्वा–इसका अभिप्राय ध्वनित होना है । निस्संदेह ध्वनित होने के पश्चात् दीप्ति और अनुरणन के गुणों की सार्थकता सम्भव है । चौथी रौतेर्वा – लेकिन ध्वनित होने के साथे 'रौतेर्वा रव अर्थात् अनुनादित होने का गुण भी होना चाहिए । चमतकृत होने से चित्त साधारण अवस्था से भिन्न हो जाता है, निस्संदेह इस दृष्टि से 'संगीतराज' की स्वर सम्बन्धी यह परिभाषा पूर्णरूपेण मौलिक है ।

पं. अहोबल ने 'संगीत पारिजात' में स्वर के विषय में अपने जो मन्तव्य व्यक्त किये हैं उनमें शब्दों के वैविध्य के अतिरिक्त पं. शार्ङ्गदेव के विचारों की पुनरावृत्ति मात्र ही परिलक्षित होती है :–

श्रुत्यनन्तरसमुत्पन्नाः स्निग्धानुरणनात्मकः

रञ्जयति स्वतः स्वान्तं श्रोतृणामिति ते स्वराः ।(2)

श्रुति के अनन्तर उत्पन्न यानि 'श्रुति' को निरन्तरता प्रदान करनेवाला स्निग्धता तथा अनुरणन के गुण से युक्त, स्वयं में रञ्जक तथा श्रोताओं को भी रंजकता प्रदान करने वाला–ऐसे गुणों से परिपूर्ण 'स्वर' है ।

अधिकांश आधुनिक आचार्यों ने भी स्वर–स्थापना आदि विषयों को ही मुख्यरूप से अपने विवेचन का आधार बनाया है, अपनी कोई भी नवीन मौलिक परिभाषा नहीं बनाई । स्वर विषय परिभाषाओं का उल्लेख करने के बाद निष्कर्ष रूप में जो वक्तिगत स्वर विषयक धारणा बनाई है, वह एक प्रकार से उनके विचारों का सारमात्र है –

---

1. जयदेव / गीता गोविंद / संगीत राज / पृ. 82
2. चौधरी, सुभाषरानी / संगीत के प्रमुख शास्त्रीय सिद्धांत / पृ. 46

१. जो नाद या ध्वनि किसी अन्य सहकारी कारण से निरपेक्ष रहकर स्वयमेव रंजक हो ।

२. जो ध्वनि राग की जनक हो ।

३. जो ध्वनि श्रुति के अनन्तर उत्पन्न होती हो तथा अनुरणनात्क हो ।

उनके अपने अनुसार स्वयं उनकी तत्सम्बन्धी परिभाषा एक नए शब्दों का तानाबाना मात्र है । वैचारिक या भावगत उसमें कुछ भी नया नहीं है । हमारे मतानुसार यह एक प्रकार से स्वर का संक्षिप्त विवेचन है । परिभाषा संक्षिप्त किन्तु सारगर्भित तात्त्विक विवेचन को कहते हैं, विस्तृत उल्लेख को नहीं ।

स्वर के सम्बन्ध में अनेक विद्वानों ने स्थान-स्थान पर अपनी निजी धारणाएं व्यक्त की हैं । के. वासुदेव शास्त्री ने अपने ग्रन्थ 'The Science of Indian Music' में स्वर के सम्बन्ध में इस प्रकार कहा है -

"A resonating sound that is formed of shrutis without intervals that has the property by itself affording pleasure to the mind of the hearer is a swara." (1)

यह परिभाषा स्वर सम्बन्धी परम्परागत मान्यताओं का अनुमोदन मात्र है ।

भरत से अधुना विद्वानों तक की स्वर सम्बन्धी सूत्रमूलक धारणाओं के यथासम्भव उपयुक्त किन्तु संक्षिप्त विश्लेषण के पश्चात् निष्कर्षरूपेण जो कुछ भी हमारी मान्यताएं बन पाई हैं, उनका साररूप प्रतिपादन यहाँ अप्रासंगिक न होगा । लेकिन इससे पूर्व हमारी स्वर संबंधी दृढ़ीभूत मान्यताओं पर आधारित एक परिभाषा-विनम्र प्रयास, किन्तु उपयुक्त सुझावों के लिए सतत तत्पर । हमारा मत है कि परिभाषा में मूर्त्त और अमूर्त दोनों तत्त्वों का समुच्चय होना चाहिए ।

2.2.4 स्वर सम्बन्धी अन्य दृष्टिकोण

भरत के पश्चात् जैसे-जैसे संगीत के सैद्धांतिक पक्ष पर गहन मनन की प्रवृत्ति बढ़ती रही, उसके अनुसार हर एक विषय के सम्बन्ध में नई-नई धारणाएं और विस्तार से सामने आती गई । यह ठीक है कि विवेचन के लिए उसी सूत्र शैली को अपनाया गया तथापि स्पष्टीकरण पहले से भी कहीं

1. K. Vasudeva Shastri / The Science of Indian Music / Page 15-16.

अधिक होने लगा । मतंग–शार्ङ्गदेव आदिने स्वर सम्बन्धी वेदकालीन धारणा का पुनः प्रतिपादन किया । सामसंहिता और सामतन्त्र दोनों में स्वरों के वर्ण, देवता, ऋषि, छन्द, रस आदि सभी का सम्बन्ध प्रत्येक स्वर से स्वतन्त्र रूप में जोड़ा है । इसका उल्लेख ब्राह्मण ग्रन्थों में भी हुआ है । इसी विस्तृत विचार–विमर्श को आधार बनाकर मतंग और शार्ङ्गदेव ने विशेषरूपेण उक्त सभी विषयों का सप्तक के मूल सात स्वरों से सम्बन्धित जैसा विवरण प्रस्तुत किया है, उसका संक्षिप्त स्वरूप इस प्रकार है –

स्वर	**वंश**	**देवता**	**वर्ण**	**रंग**	**द्वीप**	**रस**
षडज	देव	ब्रह्मा	ब्राह्मण	रक्त	जम्बू	वीर, अद्‌भुत, रौद्र
ऋषभ	ऋषि	ब्रह्मा	क्षत्रिय	पिञ्जर	शाक	वीर, अद्‌भुत, रौद्र
गान्धार	देव	सोम (गाय)	वैश्य	स्वर्ण	कुश	करूण
मध्य	देव	विष्णु	ब्राह्मण	कुन्द	क्रौंच	हास्य श्रृंगार
पंचम	पितृ	नारद (सोम)	ब्राह्मण	कृष्ण	शाल्मली	हास्य श्रृंगार
धैवत	ऋषि	तुम्बरू (सूर्य)	क्षत्रिय	पीत	श्वेत	बीभत्स व भयानक
निषाद	असुर	तुम्बरू (सूर्य)	वैश्य	मिश्रित	पुष्कर	करूण **(1)**

यह तो सर्वमान्य है कि आज के स्वर वैविध्य का सम्बन्ध पूर्व स्वरत्रयी से है – उदात्त, अनुदात्त और स्वरित । यह भी सर्वविदित है कि ये तीनों स्वर पहले व्याकरण में प्रयुक्त हुए । गद्य में अर्थ बोध की सुस्पष्टता इनका मुख्य आरम्भिक ध्येय था । उसका सम्बन्ध भाषागत अर्थबोध से है अतः उसके लिए इस स्वरत्रयी का प्रयोग पहले से ही हो रहा था । जहाँ तक संगीत का प्रश्न है उसे यह स्वरत्रयी कुछ–कुछ व्याकरण के अनुसार प्राप्त हुई और कुछ उसमें इस कला ने रक्तिगुण प्रदान करके स्वतन्त्र और मनोरम रूप प्रदान कर दिया । यहाँ संक्षेप में मात्र इतना कह देना पर्याप्त होगा कि उदात्त, अनुदात्त और स्वरित वैदिक, सामग, गन्धर्व अथवा लौकिक इन सभी परम्पराओं के परवर्त्ती स्वर सप्तक का आधार हैं, इसमें कोई सन्देह नहीं । तात्त्विक रूप में यहाँ संक्षेप में इतना कहा जा सकता है कि नारद के विचारों का जो स्पटीकरण आ. अभिनव गुप्त ने किया है उसे प्रमाणित मानकर यहाँ इन तीन स्वरों से उत्पन्न सात स्वरों की उत्पत्ति का उल्लेख किया जा रहा है–

1. चौधरी, सुभाषरानी / संगीत के प्रमुख शास्त्रीय सिद्धांत / पृ. 48

उदात्तेनिषादगान्धार व अनुदात्तऋषभधैवतो

स्वरित प्रभवा ह्येते षडजमध्यमपंचमा ॥[1]

अभिनव गुप्त ने सप्तक में व्यवहृत वैदिक स्वरों का उल्लेख करते हुए वेदयुगीन उदात्तादि स्वरों से जोड़ने की कोई धारणा व्यक्त नहीं की । उन्होंने तो केवल उदात्त, अनुदात्त और स्वरित के स्थानों के सम्बन्ध में अपनी मौलिक मान्यता प्रस्तुत की है । इसके विषय में नारदीय शिक्षा के दृष्टिकोण को सम्मुख रखते हुए नान्यदेव की मान्यता इस प्रकार है –

''उदात्तानुदात्तश्र स्वरित प्रचर्या तथा ।

निघाततश्रचेति विज्ञेयः स्वरभेदस्तु पंचधा'' ॥73॥

क्रुष्टातिस्वराभ्यां सह सप्त सामगाः परिकल्पयन्ति ॥74॥ [2]

वैदिककाल में प्रथमतः 'उदात्त' नामक स्वर ज्ञात हुआ, तत्पश्चात् अनुदात्त एवं स्वरित प्रकाश में आए । 'प्रचय' तथा 'निधात' तक यह स्वर संख्या पाँच हो गई । सामगायकों ने क्रुष्ट तथा अतिस्वार्य को भी सम्मिलित कर सप्त स्वरों की संख्या पूर्ण की । विद्वानों के अनुमानानुसार इस प्रातिशाख्य का समय ई. पूर्व 400 वर्ष हो सकता है । यह प्रामाणिक धारणाएं भरत से पहले प्रचार चें आ चूकी थी । भरत ने 22 श्रुतियों और तज्जन्य सात शुद्ध स्वरों का जो सिद्धांत बताया है वह तत्सम्बन्धी पूर्व परम्पराओं का अनुमोदन माना जा सकता है । भरत का मूल सप्तक पूर्व परम्परा की एक ऐसी कड़ी है जिसको ऐतिहासिक आधार प्राप्त है ।

परवर्ती आचार्यों ने इसे भी भरत की मौलिक कल्पना नहीं माना । उन्होंने नारदीय शिक्षा के साधारण श्रुति वाले सिद्धांत को उनके इस सिद्धांत का आधार बताया है –

''उच्चनीचस्य यन्मध्ये साधारणमितिश्रुतिः ।

तं स्वारं-स्वार संज्ञायां प्रतिजानन्ति शैक्षकाः ॥'' [3]

नारदीय शिक्षा

1. अभिनवगुप्त / अभिनव भारती / नाट्यशास्त्र
2. नान्यदेव / भरत भाष्यम् प्रथम खण्ड / शिक्षाध्याय / पृ. 23
3. देवांगन, तुलसीराम /भारतीय संगीतशास्त्र / पृ. 38

उच्च और नीच स्वर के मध्य में स्थित साधारण श्रुति को 'स्वार' कहा जाता है ।

'शिक्षाग्रन्थों के इन्हीं उल्लेखों के आधार पर नाटयशास्त्र में मध्यम और गान्धार एवं षडज और निषाद के बीच में 'साधारण स्वर' अन्तर गान्धार और काकली निषाद का स्थान बताया है ।

कुछ शताब्दियाँ पहले भारतीय संगीत दो धारणाओं में विभक्त हुआ – उत्तर और दक्षिण । दक्षिणी संगीत परम्परा के सप्तक का जो रूप अब प्रचार में है वह उत्तर भारतीय शुद्ध सप्तक से भिन्न है । निम्न सारिणी में यह अन्तर स्पष्ट देखा जा सकता है –

	उत्तर संगीत के स्वर	**दक्षिणी संगीत के स्वर**
१.	'स'	'स'
२.	कोमल 'रे'	शुद्ध 'रे'
३.	शुद्ध 'रे'	चतुःश्रुति 'रे' या शुद्ध 'ग'
४.	कोमल 'ग'	षटश्रुति 'रे' या साधारण 'ग'
५.	शुद्ध 'ग'	अन्तर 'ग'
६.	शुद्ध 'म'	शुद्ध 'ग'
७.	तीव्र 'म'	प्रति 'म'
८.	'प'	'प'
९.	कोमल 'ध'	शुद्ध 'ध'
१०.	शुद्ध 'ध'	चतुश्रुति 'ध' या शुद्ध 'नि'
११.	कोमल 'नि'	षटश्रुति 'ध' या कैशिक 'नि'
१२.	शुद्ध 'नि'	काकली 'नि' (1)

स्वर के इस क्रमगत विकास की प्रक्रिया अभी तक भी चल रही है । आज के विद्वानों ने जित नए स्वर–अन्तरालों का उल्लेख किया है, वह भी इस विकास–क्रम का नवीन चरण है । पं. ओंकारनाथ ठाकुर, एस.एन. रातान्जनकर आदि आधुनिक विद्वानों ने प्रयोग की दृष्टि से सप्तक में निर्धारित शुद्ध और विकृत स्वरों के जो अलग–अलग रूप दर्शाये हैं, वे भी एक प्रकार से स्वर प्रयोग

1. चौधरी, सुभाषरानी / संगीत के प्रमुख शास्त्रीय सिद्धांत / पृ. 51

सम्बन्धी विकासक्रम का नवीनतम रूप है । वस्तुतः स्वर रक्ति और सौंदर्य दोनों की आत्मा है, राग की रीढ़ है, श्रुति की सक्रियता है, संगीतकला विशेषज्ञ की सूझ सम्बन्धी अनुप्रेरणा है । अतः उसका वैविध्य यदि अन्तहीन बना रहे तो कोई आश्चर्य की बात नहीं ।

2.3 स्वरों की उत्पत्ति, उद्भव स्थान के संदर्भ में मान्यताएँ

स्वर का मुख्य स्त्रोत है, ध्वनि और ध्वनियों में हम प्रायः दो भेद रखते है, जिनमें एक तो 'स्वर' और दूसरे को 'कोलाहल' या ''रव'' कहते है । कुछ लोग बातचीत की ध्वनि को भी एक भेद मानते है । साधारणतः जब कोई ध्वनि नियमित और आवर्त–कम्पनों से मिलकर उत्पन्न होती है उसे सांगितिक भाषा में ''नाद'' कहते है और ''भरतनाट्यशास्त्र'' में भरत के मतानुसार पूर्व कथित नाद के श्रवण से ''स्वर'' की उत्पत्ति मानी गई है । इसके विपरीत जब कंपन अनियमित तथा पेचीदे या मिश्रित हों तो उस ध्वनि को ''कोलाहल'' कहते है । बोलचाल की ध्वनि को स्वर और कोलाहल के बीच की श्रेणी में रखा जाता है ।

मानव के कंठ में आये हुए स्वरयंत्र से आवाज़ की उत्पत्ति मानव दिमाग में स्थित एक केन्द्रद्वारा शुरू होता है । आधुनिक विज्ञान ने स्वर निर्माण में मदद करनेवाले अंगों को तीन विभाग में विभाजितकिया हैं। (१) गति देनेवाला अंग (२) आन्दोलन उत्पन्न करनेवाला अंग (३) गूंज उत्पन्न करनेवाला अंग । गति देनेवाले अंगों में श्वसन क्रिया के तमाम अंग सक्रिय और प्रमुख होते है । इस तरह ध्वनि की उत्पत्ति या आवाज़ के निर्माण में तीन क्रियाओं का समावेश होता है ।(१) श्वसन क्रिया (२) स्वर यंत्र में समाये हुए स्वरतंतुओं की आन्दोलन क्रिया (३) मुख और गले में जो खाली है उसमें हवा का सह कंपन ।

डॉ. चंद्रकांत हिराणी अपनी ''स्वर से ईश्वर'' पुस्तिका में ''स्वर'' को समझाते हुए लिखते है, मानव शरीर में से आवाज़, नाद या स्वर की उत्पत्ति के संदर्भ में प्राचीन ग्रंथों में वर्णित विश्लेषण से ऐसा फलित हुआ हैं कि मानव मतलब आत्मा को जब बोलने की इच्छा होती हैं, तब आत्मा बुद्धि को प्रेरणा देती है और तब मन जठराग्नि को उद्दीप्त करता हैं और जठराग्नि उद्दीप्त होने से

वहाँ ब्रह्मग्रन्थि में स्थित वायु के ऊपर से नीचे विचरण के साथ नाभि, हृदय, कंठ, मूर्धा तथा मुख से ध्वनि उत्पन्न करता हैं ।[1]

भरतमुनिने इसी बात को अति गहेराइयों में जाकर कहा है । ''जब जीवात्मा बोलने की इच्छा करता है तो उसे सर्वप्रथम मन की प्रेरणा मिलती है, मन शरीर में अवस्थित अग्नि को प्रेरित करता है, अग्नि पवन को तथा पवन नाभिस्थान से उद्‌भुत होते हुए क्रमशः हृदय, कंठ तथा शीर्ष स्थान में गति उत्पन्न करते हुए अंत में मुख के मार्ग से निस्तृत हो कर ध्वनि उत्पन्न करता है । नाभि स्थान से उत्पन्न इस ध्वनि को ही सूक्ष्मरूप में ''नाद'' कहते हैं ।

शास्त्र में नाद के त्रिविध प्रभेद माने है (१) मन्द्र (२) मध्य (३) तार । हृदय से उद्‌भव को ''मन्द्र'', कण्ठ से उत्पन्न को ''मध्य'' तथा शीर्ष से उत्पन्न नाद को ''तार'' कहा जाता है । इस नाद के अन्य भेदों की भी शास्त्रकार ने योजना की हैं जिन्हें ''श्रुति'' कहेंगे । ''वसंत'' के मतानुसार ध्वनि की प्रारंभिक अवस्था ''श्रुति'' और उसका अनुराणनात्मक (गुंजित) स्वरूप ही ''स्वर'' कहलाता है ।

यदि ''श्रुति'' के बारे में जाना जाए तो श्रवण के योग्य होकर नाद के जो विभाजन से २२ भेद बनते है ये ''श्रुति'' कहलाते है । वह प्रथम श्रवण के रूप में होता है । प्राचीन आचार्यों ने श्रुति नामक श्रवणगम्य २२ स्वरान्तर माने है । श्रुतियाँ कण्ठ में उत्तरोत्तर तीव्रतर तथा वीणा में अधराधर या उच्चोच्चतर रहती है । ध्वनि के ये २२ भेद क्यों हुए इस जिज्ञासा के उत्तर में कुछ आचार्यों के मत में हृदय के उर्ध्वमार्ग में ईडा तथा पिंगला नामक दो नाडियाँ है । इनसे दुसरी २२ नाडियाँ उत्तरोतत्तर संलग्न हुई होती है । इन नाडियों से जब नाभिस्थ पवन टकराता है । मन्द्रस्थान हृदय होता है, जिसमें विद्यमान नाड़ी अतिशय धीमी होती है और अगली नाडी से उत्पन्न होनेवाली श्रुति का उत्तरोत्तर सहज ही ऊँची होती जाती है और कण्ठ जो मध्य नाद का और शीर्ष जो तार नाद का स्थान होता है । इन तीन स्थानों से बाईस श्रुतियाँ अभि-निष्पन्न होती है ।

आचार्य अभिनवगुप्त के अनुसार, श्रुतियाँ उच्चनीय होते हुए भी स्वराश्रित होती है । इसी कारण जब ''ऋषभस्त्रिश्रुति'' कहा जाता है तो इसका आशय यह नही है कि तृतीय श्रुति या श्रुति पर ऋषभ है । क्योंकी श्रुतिरूप अवयवों से स्वर उत्पन्न नहीं होता और न ही यह श्रुतियों का संचय

---

1. हिराणी चंद्रकांत / स्वर से ईश्वर / पृ. 65

हैं ।अत: तीनों श्रुतियों को "ऋषभ" समझना चाहिए । इसकी अन्य व्याख्या भी है – "तन्त्री पर आघात करने पर आद्यक्षण में सुनाई देनेवाली ध्वनि "श्रुति" होती है तथा उसके पश्चात सुनाई देनेवाली अनुराणनात्मक ध्वनि "स्वर" है, जिसे "श्रुत्यनन्तरभावी" कहा भी है ।

अत: इन श्रुतियों से स्वरो का उद्भव होता है । उपर्युक्त २२ श्रुतियों से ७ स्वरों की उत्पत्ति होती है जिसे "श्रुतिभ्य: स्यु: स्वरा: सप्त" से दिखलाया है । इन स्वरों के नाम षड्ज, ऋषभ, गन्ढ धार, मध्यम, पंचम, धैवत, निषाद । मेरे शोध–प्रबंध के विषय में जब मेने माननिय अब्दुल रशिद खाँ साहब से बात–चीत की थी तब आपने बेहद खुबसुरत एक कथन की चर्चा की थी जो यहाँ बताना चाहूँगी ...

षण्णां स्वराणां जनक: षड्भिर्वा जन्यते स्वरै: ।

षड्भ्या वा जायतेऽद्रेभ्यों षड्ज इत्यभिधीयते ॥

यह छ स्वरों से प्रकाशित करता है । अंगभूत छ: स्वरों से प्रकाशित होता है अथवा छ: स्थानों या अंगो (नासिका, कण्ठ, उदर, तालु, जिह्वा तथा दन्त) से उत्पन्न होने के कारण यह "षड्ज" कहलाता है । इसी प्रकार अन्य स्वरों की व्युत्पत्ति भी सहेतुकी है । इन स्वरों की सामान्य व्यवहार में बोलने के लिए संकेत संज्ञा अक्षर में रखी गई है ।

षड्ज का 'सा'	पंचम का 'प'	ऋषभ का 'रे'
गंधार का 'ग'	निषाद का 'नि'	मध्यम का 'म'

यदी इन स्वरों को हिन्दी भाषा व्याकरण के साथ देखे जाए तो –

अकार, इकार और उकार स्वर वाणी आधारित हैं । षड्ज, ऋषभ और गांधार स्वर संगीत आधारित हैं । जिस तरह अकार तमाम स्वर या व्यंजनों की उत्पत्ति का आधार है, उसी तरह संगीत में भी षड्ज भी सभी स्वरों की उत्पत्ति का कारण हैं, वो आगे समजेंगे । वाणी में अकार और संगीत में षड्ज दोनों की उत्पत्ति कंठ से ही होती हैं । इकार की तुलना संगीत के दूसरे स्वर ऋषभ के साथ की जाती है । दोनों का उच्चारण स्थान तालु है एवं वे दोनों शक्ति के स्वरूप हैं । वृषभ शिव का वाहन है, जो वीर्य और पराक्रम का प्रतीक है । ऋषभ और इकार दोनों एकरूप हैं ।

1. अब्दुल रशिद खाँ साहब से साक्षात्कार के दौरान

संगीत में उसे वीर रस उत्पन्न करनेवाला माना जाता है । इसका उच्चारण गले से किया जाता है तब अकार का उच्चारण होता है । वागिन्द्रिय को जो धारण करता है उसे गंधार कहते हैं जिसके उच्चारण में नाक का उपयोग होता है । इस तरह सातों स्वरों को आगे विस्तृत में लिपिबद्ध किया गया है ।

शोधकर्ताने शोधकार्य के दरमियान यह सात स्वरों की उत्पत्ति में कई मतभेद माने गए है ऐसा जाना । जैसे कि वसंत लिखित 'संगीत विशारद'' में कहा गया है कि फारसी का एक विद्वान मत है कि, हज़रत मूसा जब पहाड़ो पर घूम-घूम कर वहाँ की छटां देख रहे थे, उसी वक्त गैब (गुफा) से एक आवाज़ आई (आकाशवाणी हुई) कि ''या मूसा हकीकी, तू अपना असा (एक प्रकार का डंडा जो फकीरों के पास होता है) इस पत्थर पर मार ।'' यह आवाज़ सुनकर हज़रत मुसाने अपना असा जोर से उस पत्थर पर मारा, तो पत्थर के ७ टुकड़े हो गए और हर एक टुकडे में से पानी की धारा अलग-अलग बहने लगी । उसी जलधारा की आवाज़ से ''अस्सामलेकुम हज़रत मूसा'' ने सात स्वरों की रचना की, जिन्हें ''सा रे ग म प ध नि'' कहते है ।

एक अन्य फारसी विद्वान का कथन है कि, पहाड़ो पर ''मूसिकार'' नाम का एक पक्षी होता है, जिसकी चौंच में बाँसुरी की तरह सात सूराख होते है । उन्हीं सात सूराखों से सात ईजाद हुए ।

भारतीय ऋषि मुनियोंने उपरोक्त सारे मतों को आध्यात्मिक बाबतों को, अपने अनुभव के आधार पर आत्मसात् की है ।

शोधकर्ताने शोध करते समय यह महसूस किया कि, परमब्रह्म परमात्मा का जब सृष्टि के आदि काल में प्राकट्य हुआ, तब वह शब्दब्रह्म या नादब्रह्म के रूप में अज्ञात से विज्ञात हुआ । भारतीय तत्त्वज्ञानियों के मतानुसार प्रकृति और पुरुष का जब समागम हुआ तब उसके स्पंदन से एक ध्वनि उत्पन्न हुई, जिसे शब्दब्रह्म या नादब्रह्म की संज्ञा दी गई । इसी स्पंदन को ही ॐकार, प्रणव, अनाहत नाद, सत्यब्रह्म, ज्ञानब्रह्म आदि कहा जाता है । भारतीय ऋषि-मुनियों ने सत्य के ज्ञान के साथ समाधि अवस्था में नादब्रह्म के स्वरूप का अनुभव किया । इस अनुभव से उत्पन्न हुए सत्य एवं चेतना के स्पंदन को व्यक्त करने के लिये कोई भाषा, शब्द, अक्षर या व्याकरण न था । इसलिये इस प्रकार के ज्ञान को विस्तृत रूप में समझने के लिये एक काल्पनिक भाषा के आधार पर भारतीय

ऋषि-मुनियों ने ज्ञान की पुस्तकों के रूप में वेद प्रकट किये । इस सत्य ज्ञान को भगवान श्री कृष्ण ने गीता में धर्म कहा और इस धर्म को मानवीय जीवन में गूंथने के विभिन्न साधन भी समझाये । जिनमें ज्ञानयोग, कर्मयोग और भक्तियोग आदि का समावेश होता है ।

"नादब्रह्म" जिसे मूल स्पंदन कहा जाता है, उसकी संगीत लहरी से वर्तमान युग में भी समग्र विश्व झूम उठता है । नाद संगीतमय है । उसमें ज़रा सी भी रूकावट आ जाने पर बेसूरा लगने लगता है । जैसे प्राणों की गति में थोड़ी सी अड़चन आने से मानव को जो अनुभव होता है, वैसे ही अनुभव संगीत स्वर बेसूरा हो जाने पर करवाते है । सात स्वरों के रूप में गान की सात भूमिकाओं को सप्त ऋषियों का रूप मानकर साधना की जाती है । ॐ, भूः, स्वः, महः, जनः, तपः और सत्यं के नाम से क्रमशः सा रे ग म प ध नि सां के रूप में देखकर साधना की जाती है ।

अन्तर संवेदन की भाषा, स्वर, लय और अभिनय से ही समझी जा सकती है । सुख, दुःख, हर्ष, शोक, आवेग, उद्वेग, राग, द्वेष आदि हृदय की उर्मियाँ भाषा से नहीं, बल्कि स्वरों से ही पहचानी जाती हैं और स्वरों से ही निश्चित होती हैं । संगीत ऋषि पं. विष्णु दिगम्बर पलुस्कर के प्रयत्नो से संगीत के सात स्वर अधिक स्पष्ट हुए है । उन सात स्वरों की श्रुति इत्यादी तथा कोमल-तीव्र स्वर मिलाकर एक सप्तक के अन्तर्गत २२ श्रुति स्वीकार्य बनी है ।

आचार्य बृहस्पति जी की "संगीत चिंतामणी" (द्वितीय खंड) में उन्होंने अपना मत "स्वरो" के प्रति प्रदर्शित करते हुए कहा है कि, "महाभारत को ज्ञान-विज्ञान का कोष कहा जाता है । कहा तो यहाँ तक गया है, "जो कुछ 'महाभारत' में कहा गया है, अन्यत्र उसकी पुनरावृत्ति मात्र है । जो कुछ 'महाभारत' में नहीं है, वह कहीं भी नहीं है।'

अश्वमेघ पर्व के अंतर्गत अनुगीता पर्व में कहा गया है कि, "आकाश में उत्पन्न "प्रविभागवान्" शब्द दस प्रकार का है -

(१) षड्ज (२) ऋषभ (३) गांधार (४) मध्यम (५) पंचम

(६) निषाद (७) धैवत (८) इष्ट (९) अनिष्ट और (१०) संहत" ।

'महाभारत' की प्रसिद्ध टीका नीलकंठी इस पर मौन है । अस्तु इस कथन में "प्रविभागवान्", "इष्ट", "अनिष्ट" और "संहत" शब्द विचारणीय है ।

- प्रविभागवान् :-

शब्द तो अखंड है, विशिष्ट श्रुति- संख्या के अनुसार मंद्र, मध्य, तार स्थान में स्वर सप्तक की स्थापना उसका "विभाजन" या "विभाग" (विशिष्ट रूप में बाँटना) या षड्जग्राम एवं मध्यमग्राम के अंतर्गत स्वरों को व्यवस्थित करना है । वर्णमाला के आधार पर जब सार्थक शब्दों की योजना होती है, तभी भाषा की सृष्टि होती है, इसी प्रकार स्वर-सप्तक के आधार पर रंजक जातियों अथवा रागों की अवतारणा से स्वर सप्तक में रंजकता की सृष्टि ही स्वर सप्तक को "प्रकर्ष" (महत्व-गौरव) देकर व्यवहार के योग्य बनाती है । अतः "प्र + वि + भागवान्" (प्रविभागवान्) शब्द का अर्थ ग्राम, जाति एवं राग इत्यादि के विभाग से युक्त "शब्द" हुआ ।

- इष्ट, अनिष्ट और संहत :-

शब्द के उपर्युक्त दस भेदों में सात स्वर संज्ञाएँ है, जो सप्तक में स्वरों के निश्चित स्थान का बोध कराती है । इष्ट, अनिष्ट और संहत स्थापित स्वरों के पारस्परिक संबंध की ओर संकेत करते है । 'इष्ट' का अर्थ "वांछनीय, प्रिय या चाहा हुआ" है और 'अनिष्ट' का अर्थ "अवांछनीय, अप्रिय या अनचाहा" है । जिससे प्रयोजन की सिद्धि हो, सुख हो, वह इष्ट है और प्रयोजन-सिद्धि में बाधक हो वह अनिष्ट है । "संहत" का अर्थ (संघातयुक्त) समूही-भूत है । परस्पर संवादी स्वर साथ-साथ छिड़ने पर अच्छे प्रतित होते है । 'सा-प', 'रे-ध-', 'ग-नि', और 'सा-म' जुडवा भाईयों जैसे है । इसीलिए "यम" कहा गया है । 'यम' का अर्थ है जुड़वा । इसीलिए सात स्वरों के शौनक ने - "सप्त स्वरा ये यमास्ते" अर्थात् "जो सात स्वर है वे यम है' कहा है ।

आचार्य बृहस्पति जी ने अपने ग्रंथ "संगीत चिंतामणी" भाग-१ में 'षड्ज' को जनक कहा है । उनके मतानुसार इससे पूर्ववर्ती किसी स्वर का अस्तित्व इस मूर्च्छना में संभव नहीं, जिसकी अपेक्षा षड्ज की ऊँचाई बताई जाए, फलतः इसके पश्चाद्वर्ती स्वरों की ऊँचाई इसकी अपेक्षा बताने के लिए ही "नाट्यशास्त्र" में क्रमशः ऋषभ, गांधार, मध्यम, पंचम, धैवत एवं निषाद की श्रुति संख्या का निर्देश किया है, तत्पश्चात् षड्ज की श्रुतियाँ बताई है ।

इस प्रकार जिसमें आयिम ध्वनि "षड्ज" के रूप में गृहित है और अन्य सात स्वर उस "गृहीत" ध्वनि के आधार पर स्थापित है ।

2.3.1 सामवेद के स्वर और उनके नाम

"स्वर" यह शब्द को ज्यादा समझने के लिए इतिहास से लेकर आजतक के स्वरों के स्वरूप समझना जरूरी है । नारदीय शिक्षा ने साम के स्वरों के नाम इस प्रकार है ।

प्रथमश्य द्वितीयश्य तृतीयोऽथ चतुर्थकः ।

मन्द्रः कृष्टो ह्यतिस्वार एतान कुर्वन्ति सामगाः ॥[1]

यहाँ विचारणीय यह है कि, "प्रथम, द्वितीय, तृतीय, चर्तुथ" इन चार स्वरों के नाम, संख्यात्मक शब्दों द्वारा व्यक्त किये गये है और मन्द्र, कृष्ट, ह्यतिस्वार" इन तीन स्वरों के नाम वर्णनात्मक शब्दो द्वारा । यह अकारण नहीं है । इन दो प्रकार के नामों से सामग्राम के विकास का संकेत मिलता है । ऐसा जान पडता है कि, पहले साम में केवल ३–४ स्वरों का प्रयोग होता था ।

नारदीय शिक्षाने **वैदिक गान** के निम्न प्रकार बतलाए :

आर्चिकं गाथिकं चैव सामिकं च स्वरान्तरम् ।

कृतान्ते स्वरशास्त्राणां प्रयोक्तव्ये विशेषतः ॥[2]

आर्चिक, गाथिक इत्यादी पर 'संगीत रत्नाकर' में दी हुई कल्लिनाथ की टीका इस प्रकार है :

यज्ञप्रयोगेष्वृचामेकस्वराश्रयत्वात् तत्सम्बन्धादार्चिकः ।

तथा गाथासम्बन्धाद् गाथिको हि स्वरः।

सामसम्बन्धात् त्रिस्वरस्थानः सामिकः ॥ [3]

अर्थात् यज्ञ के प्रयोगो में जब ऋचाओं को एक ही स्वर के आश्रय से गाते थे तो उस गान को आर्चिक कहते थे । यथा स स स अथवा नि नि नि अथवा रे रे रे । यह गान हवन, मन्त्रपाठ, जप इत्यादि के लिए उपयुक्त था । गाथाएँ दो स्वरों में गाई जाती थी, अतः उन्हें गाथिक कहते थे । गाथा इस प्रकार होती थी – ऩि ऩि ऩि ऩि सा सा सा सा ।

---

1. आचार्य, शिवराज : कौटिध्यायन / नारायणी / नारदिय शिक्षा / स्वरित स्वर निर्देश स्थान निरूपणम् / पृ.101
2. आचार्य, शिवराज : कौटिध्यायन / नारायणी / नारदिय शिक्षा /स्वरित स्वर निर्देश स्थान निरूपणम् / पृ.102
3. आचार्य, शिवराज : कौटिध्यायन / नारायणी / नारदिय शिक्षा /स्वरित स्वर निर्देश स्थान निरूपणम् / पृ.103

2.3.2 स्वर के तीन स्थान

नारद ने स्वरोच्चार के तीन मुख्य स्थान माने हैं – उर, कण्ठ और शिर । विवरणकारने इसको इस प्रकार से स्पष्ट किया है – **"नीचमध्योतमरूपतया वाक् उरसि, कण्ठे, शिरसि त अभिव्यज्यते"**[(1)] (पृष्ठ ४, मैसुर सं.)। अर्थात् नीचे के स्वर उर, बीच के स्वर कण्ठ और ऊँचे स्वर शिर में अभिव्यक्त होते है । यह बात तो और ग्रन्थों में भी मिलती है । किन्तु नारदीय शिक्षा ने इस विषय का वेद–पाठ से सम्बन्ध बताया है –

उरः कण्ठश्शिरश्यैव स्थानानि त्रीणि वाड्मये ।

सवनान्याहुरेतानि साम्नश्चाप्यधरोत्तरे ॥[(2)]

अर्थात् साम – सम्बन्धी गान प्रातः सवन के समय वक्षस्थान में अर्थात् नीचे के स्वर में, दोपहर के (माध्यन्दिन)सवन के समय कण्ठ स्थान में अर्थात् मध्यस्थानीय स्वरों में और सायंकाल के सवन में शिरस्थान में अर्थात् ऊँचे स्वरों में गान करना चाहिए ।

2.3.3 स्वरों का प्रियत्व और जगत् का सामोपजीवित्व स्वर और जीवों का सम्बन्ध

"नारद" की दृष्टि से भिन्न–भिन्न स्वर भिन्न–भिन्न कोटि के जीवों के लिए प्रिय होते है ।

षड्जः प्रीणाति वै देवानृषीन् प्रीणाति चर्षभः ।

पितृन प्रीणाति गान्धारो गन्धर्वान् मध्यमः स्वरः ॥

देवान् पितृन् ऋर्षीश्चैव स्वरः प्रीणाति पंचम् ।

यक्षान्निषादः प्रीणाति भूतग्रामं च धैवतः ॥ [(3)]

अर्थात् षड्ज स्वर से देव प्रसन्न या तृप्त होते है, ऋषभ स्वर और गान्धार से पितृ लोग, मध्यम से गन्धर्व, पंचम से देव, पितृ और ऋषि तीनों इतर प्राणी धैवत से प्रसन्न होते है एवम् निषाद से यक्ष ।

---

1. आचार्य, शिवराज : कौटिध्यायन / नारायणी / नारदिय शिक्षा / मैसुर सं. / पृ. 4
2. आचार्य, शिवराज : कौटिध्यायन / नारायणी / नारदिय शिक्षा / मैसुर सं. / पृ. 9
3. आचार्य, शिवराज : कौटिध्यायन / नारायणी / नारदिय शिक्षा / मैसुर सं. / पृ. 9

स्वयं नारदने अपनी शिक्षा में जो उपजीवित्व का क्रम दिया है वह इस प्रकार है :

क्रुष्टेन देवा जीवन्ति प्रथमेन तु मानुषाः ।

पशवस्तु द्वितीयेन गन्धर्वाप्सरस्तवनु ॥

अण्डजाः पितरश्ते चतुर्थस्वरजीविनः ।

मन्द्रत्वेनोपजीवन्ति पिशाचासुरराक्षसाः ॥

अतिस्वारेण नीचेन शिष्टं स्थावरजंगमम् ।

स्र्वाणि खलु भूतानि धार्यन्ते सामिकैः स्वरैः ॥[(1)]

अर्थात् क्रुष्ट या मध्यम से देव जीते है, प्रथम या गान्धार से मनुष्य, द्वितीय या ऋषभ से पशु, तृतीय या षड्ज से गन्धर्व और अप्सरायें चतुर्थ या निषाद से अण्डे से उत्पन्न होनेवाले प्रजीव और पितृ लोग, मन्द्र या धैवत से पिशाच, असुर, राक्षस लोग, अतिस्वार या पंचम से स्थावर और जंगम जीवित रहे है । सभी प्राणीयों का धारण साम अर्थात् स्वरों द्वारा हो रहा है ।

2.3.4 स्वरों की तारता का निर्धारण

षडजम्मयूरो वदति गावो रम्भन्ति चर्षमम् ।

अजा वदति गान्धारे क्रौञ्चो वदति मध्यमम् ॥

पुष्पसाधारणे काले पिको वक्ति च पञ्यमम् ।

उश्वस्तु धैवतं वक्ति निषादं वक्ति कुञ्जर ॥[(2)]

अर्थात् ''षड्ज'' बोलता है यानी कि सर्वप्रथम ''षड्ज'' का अस्तित्व का श्रेय ''मोर'' को जाता है । गौ ''ऋषभ'' बोलती है । इस ''मत'' में भी कुछ मत मतांतर है । वसंत अपनी ''संगीत विशारद'' में बताते है कि चातक से ''ऋषभ'' उत्पन्न होता है । बकरी ''गान्धार'' बोलती है । कौंच पक्षी ''मध्यम'' बोलता है, एक और मत मुताबिक ''कौंआ'' मध्यम बोलता है । पुष्प के उद्‌भव काल अर्थात् वसन्त में कोयल ''पंचम'' बोलती है । घोड़ा ''धैवत'' बोलता है, अन्य मतानुसार ''दादुर'' धैवत बोलता है । हाथी ''निषाद'' बोलता है ।

---

1. आचार्य, शिवराज : कौटिध्यायन / नारायणी / नारदिय शिक्षा / पृ. 19, 22
2. आचार्य, शिवराज : कौटिध्यायन / नारायणी / नारदिय शिक्षा / पृ. 122

उपरोक्त विषय में थोड़ा आंशिक मतभेद कुछ इस प्रकार है ।

मयूरचातकच्छाग क्रौंच कोलिक दर्दुराः ।

गजेश्च सप्तषड्जादीन्क्रमान्दुच्चारयन्त्यमी ॥[1]

संगीत रत्नाकर

अगर दोनो मतों को कोष्टक में देखा जाए तो अधिक समझ सकेंगे ।[2]

सामान्य नाम	संक्षिप्त	स्वरवाणी
षड्ज	सा	मयूर (मोर)
ऋषभ	रे	चातक (गौ)
गान्धार	ग	छाग (बकरा)
मध्यम	म	क्रौंच (सारस)/कौआ
पंचम	प	कोकिल (कोयल)
धैवत	ध	दादूर (मेढ़क) /घोड़ा
निषाद	नि	हस्ती (हाथी)

स्वरों की तारता (पिच) का पशु–पक्षी ध्वनि से निर्धारण करने की यह प्रक्रिया संगीत की उस अवस्था का परिचायक है जिस समय कोई स्थिर आधार–स्वर नहीं था । इसमें संदेह नहीं है कि यह एक बहुत स्थूल ढंग था, किन्तु यह सवर्था हुआ नहीं था और जैसा आजकल के बहुत से लोग समजते है, हास्यास्पद नहीं था । यह हमारे पूर्वजों के प्रकृति निरीक्षण की कुशलता का परिचायक है।

प्रो. ललितकिशोरसिंहने अपने "ध्वनि और संगीत" नामक ग्रन्थ में यह बतलाया है कि, "डार्विन"ने अपने निरीक्षण से यह सिद्ध किया है कि, कुछ पशु–पक्षियों की ध्वनि में भिन्न–भिन्न स्वरों के अन्तराल पाये जाते है । वाटरहाउस ने बनमानुष जाति के "गिबन" नामक जीव की ध्वनि में एक पूरे अष्टक को पाया और "आवेन" ने जो स्वयं एक गायक थे, इसका समर्थन भी किया ।

वैज्ञानिकों ने अपने निरीक्षण से यह सिद्ध किया है कि पशु–पक्षियों की ध्वनि में उतार–चढ़ाव या अन्तराल होता है । इनकी ध्वनि नीचे से प्रारम्भ होकर एक विशेष ऊँचाई पर रूक जाती है । उदाहरणतः कोकिल की ध्वनि का विस्तार षड्ज पंचम के अन्तराल को बतलाता है ।

1. आचार्य, शिवराज : कौटिध्यायन / नारायणी / नारदिय शिक्षा / पृ. 122

2. हिराणी, चंद्रकांत / स्वर से ईश्वर / पृ. 62

याज्ञवल्क्य, नारद आदि ने जो शिक्षा ग्रन्थों से पक्षियों की आवाज़ पर स्वरों की तारता का निर्धारण किया है वह सर्वथा अवैज्ञानिक नहि है । यह वैज्ञानिक प्रयोग से परीक्षण करने की बात है कि जिन पक्षियों की ध्वनि के आधार पर उन्होंने जिन स्वरों का निर्धारण किया है, वही अन्तराल उन पक्षियों की ध्वनि की रूकावट में मिलता हे या नहीं ।[(1)]

2.3.5 भिन्न–भिन्न स्वरों का उत्पत्ति–स्थान और उनका नामकरण

पहले नारद ने यह बताया कि प्रधान रूप से षड्ज कण्ठ से उत्पन्न होता है, ऋषभ शिर से, गान्धार आनुनासिष्य है, मध्यम उर से, पंचम उर, शिर और कण्ठ से, धैवत ललाट से, निषाद कण्ठ इत्यादि की सन्धियों से उत्पन्न होता है । इसके अनन्तर नारद ने विस्तृत रूप से स्वरों की उत्पत्ति का स्थान बतलाया है, जो इस प्रकार है ।

- षड्ज :

नासाकण्ठमुरस्तालुं जिह्वा दन्ताँश्च संिश्रत ।

षड्भिस्संजायते यस्मात् तस्मात् षड्ज इति स्मृतः ॥ [(2)]

नास, कण्ठ, उर, तालु, जिह्वा और दाँत इन छः स्थानों से मिलकर षड्ज (षट्–छः, ज–पैदा हुआ) स्वर उत्पन्न होता है । इसलिए इसे "षड्ज" कहते है । इसी बात को आगे चलकर मतंग और संगीत समयसार ने भी दुहराया है ।

- ऋषभ :

वायुस्समुत्थितो नाभ्रेः कण्ठशीर्षसमाहतः ।

नदत्यृषभवद्यस्मात् तस्माऋषभ उच्चते ॥ [(3)]

नाभि से वायु उठ कर जब कण्ठ और शिर में लगता है तब ऋषभ या बैल की आवाज़ के समान आवाज़ निकलती है । इसीलिए इसे ऋषभ कहते है । जैसे मैंने आगे बताया कि कुछ विद्वानों के मतानुसार चातक जैसी भी इसे आवाज़ मानी जाती है । संगीत समयसार में भी इन्हीं शब्दों में ऋषभ की उत्पत्ति बतलाई गयी है ।

---

1. सिंह, ललितकिशोर / ध्वनि और संगीत / पृ. 131
2. आचार्य, शिवराज : कौटिध्यायन / नारायणी / नारदिय शिक्षा / पृ. 122
3. आचार्य, शिवराज : कौटिध्यायन / नारायणी / नारदिय शिक्षा / पृ. 122

➢ गान्धार :

वायुःस्समुत्थितो नाभेः कण्ठशीर्षसमाहतः।

नासागन्धावहः पुण्यः गान्धारस्तेन हेतुना ॥ (1)

इस पर भट्ट शोभाकर का जो विवरण है उसमें उनके मतानुसार, ''शीर्षशब्देन नासिकोच्यते'' उनका कहेना है कि, यहाँ शीर्ष शब्द से नासिका का संकेत किया गया है । इसके पूर्व भी नारद ने गान्धार को आनुनासिक्य कहा है और इस श्लोक में भी गान्धार को ''नासागन्धा वहः'' कहा गया है ।

नासिष्य वायु से जो स्वर निकलता है उसे 'गान्धार' कहते है । किन्तु पार्श्वदेव ने संगीत समयसार में इसका सम्बन्ध 'गन्धर्व' से बतलाया है ।

➢ मध्यम :

मध्यक की उत्पत्ति नारद ने इस प्रकार बताई है :

वायुस्समुत्थितो नाभेरूरोहदि समाहतः।

नाभि प्राप्तो महानादः मध्यमत्वं समश्नुते ॥ (2)

अर्थात् जब वायु नाभि से उठकर उर और हृदय में लगता है, तब जो आवाज़ होती है उसे मध्यम कहते है ।

➢ पंचम :

पञ्चम की उत्पत्ति का वर्णन इस प्रकार है :

वायुस्समुत्थितो नाभेः उरोहत्कण्ठशिरोहतः।

पञ्चस्थानस्थितस्यास्या पञ्चमत्वं विधीयते ॥(3)

वायु यदी नाभि से उठकर उर, हृदय, कण्ठ और शिर में लगता है तो पाँच स्थानों को स्पर्श करने से उसे 'पंचम' कहते है । पार्श्वदेव ने भी इसी प्रकार से पंचम की उत्पत्ति का वर्णन किया है, किन्तु उन्होंने ''ओष्ठ'' को भी इसके स्थानों में सम्मिलित कर लिया है, जिसको लेकर छः स्थान हो जाते है और फिर ''पंचम'' की व्युत्पत्ति की संगति नहीं बैठती । उनके पंचम की उत्पत्ति में छः स्थानों का समावेश प्रमादवश ही हुआ है ।

---

1. आचार्य, शिवराज : कौटिध्यायन / नारायणी / नारदिय शिक्षा / पृ. 122
2. आचार्य, शिवराज : कौटिध्यायन / नारायणी / नारदिय शिक्षा / पृ. 122
3. आचार्य, शिवराज : कौटिध्यायन / नारायणी / नारदिय शिक्षा / पृ. 123

➢ धैवत :

नारद ने विशिष्ट रूप से धैवत और निषाद की उत्पत्ति का वर्णन नहीं दिया है केवल सामान्य रूप से उन्हों ने पृष्ठ –२४ पर कहा है कि ललाट का स्थान धैवत है और निषाद सब सन्धियों से उत्पन्न होता है । पार्श्वदेव ने धैवत की उत्पत्ति को विशिष्ट वर्णन इस प्रकार दिया है ।

नाभेः समृत्थितो वायुः कण्ठतालुशिरोहृदि ।

तत्तत्स्थानधृतो यस्मात्ततोऽसौ धैवतो मतः ॥ (1)

इस स्वर में नाभि से वायु उठकर कण्ठ, तालु, शिर और हृदय में धृत होता है इसलिए इसका नाम धैवत है ।

➢ निषाद :

निषाद की उत्पत्ति का वर्णन पार्श्वदेव ने इस प्रकार दिया है :

नाभेः समुत्थिते वायौ कण्ठतालुशिरोहते ।

निषीदन्ति स्वराः सर्वे निषादस्तेन कथ्यते ॥ (2)

इस स्वर में वायु नाभि से उठ कर कण्ठ, तालु और शिर में लगता है । सभी स्वर यहाँ आकर बैठ जाते है अर्थात् विश्रान्ति पाते है, समाप्त हो जाते है, इसलिए इसे "निषाद" कहते है । संस्कृत में नि + षद् का अर्थ है – बैठना, विश्रान्ती पाना ।

उपरोक्त वर्णन से प्राय: सभी स्वरों के विषय में या बतलाया है कि वे नाभि से उठते है । स्वरों की उत्पत्ति का उपर्युक्त वर्णन कहाँ तक वैज्ञानिक है यह शरीरविज्ञानविद् द्वारा परीक्षण करने से ही जाना जा सकता है । स्वरों के उपर के वर्णन से यह भी स्पष्ट है कि नारदीय शिक्षा में वैदिक और लौकिक दोनों स्वरों का वर्णन है ।

उपरोक्त विषय पर एक भिन्न मत को सामने रखना चाहुँगी ।

"संगीत रत्नाकर" के निम्नलिखित श्लोक कुछ विभिनन दृश्य ही दिखलाता है ।

"नाभिस्थाने भवेत्षड्जो नासिकायां तथर्षभः ।

गान्धारश्च कपाले स्यात् हृदये मध्यम् स्मृतः ॥

1. आचार्य, शिवराज : कौटिध्यायन / नारायणी / नारदिय शिक्षा / पृ. 123
2. आचार्य, शिवराज : कौटिध्यायन / नारायणी / नारदिय शिक्षा / पृ. 123

ग्रीवायां पन्चमो जातः कपाले धैवतस्तथा ।

तालुस्थाने निषादश्च्च स्वर व्यूहः प्रदर्शितः ॥ (1)

उपरोक्त दोनो मतों की विभिन्नता को स्पष्ट करते हुए एक कोष्टक बनाना चाहुँगी ।

नाद स्थान	सामान्य नाम	संक्षिप्त	''संगीत रत्नाकर'' के मुताबीक उत्पत्तिस्थान	''नारदीय शिक्षा'' के मुताबीक उत्पत्तिस्थान
१	षड्ज	सा	नाभि	कण्ठ
५	ऋषभ	रे	नासिका(नाक)	शिर
८	गान्धार	ग	कपोल (गाल)	आनुनासितय
१०	मध्यम	म	हृदय (उर)	उर (हृदय)
१४	पंचम	प	ग्रीवा (गर्दन)	उर, शिर, कण्ठ
१८	धैवत	ध	शिरस्थान(कंपाल)	ललाट
२१	निषाद	नि	तालु स्थान	कण्ठ इत्यादी संधी

उपरोक्त कोष्टक के हिसाब से 'मध्यम' की उप्तत्ति स्थान के इलावा एक भी स्वर की स्थान का मत समान नहीं पाया जा रहा । मेरे मतानुसार इस विषय में मेरे मतानुसार इस विषय में स्वानुभव ज्यादा ज़रूरी है ।

2.3.6 स्वरों के मुख, भुजा

''संगीत'' मासिक पत्रिका मार्च, १९९८ के अंक में श्री मदनलाल व्यास ने स्वरों के मुख, वाहन, स्थान, वर्ण, देवता, जन्म, काल, नक्षत्र आदि के विषय में माहिती दर्शार्यी है, जो निम्नलिखित है ।

१. **षड्ज** : छः मुख, चार हाथ, दो हाथों में कमल, दो हाथों में वीणां ।

२. **ऋषभ** : एक मुख, चार भुजा, दो हाथों में कमल, दो हाथों में वीणा ।

३. **गांधार** : एक मुख, चार हाथ, चार हाथों में वीणा, फलकम घंटा के साथ ।

४. **मध्यम** : एक मुख, चार भुजा, वीणा के सातों स्वर के मध्यम ।

५. **पंचम** : एक मुख, छः भुजा, दो हाथों में वीणा, चार हाथों में शंख ।

1. मिश्र, राजेश्वर / पं. शार्ङ्गदेव कृत संगीत रत्नाकर / पृ. 140

६. **धैवत** : एक मुख, चार भुजाएं, चार हाथों में वीणा, खट्वांग फल ।

७. **निषाद** : हाथी जैसा मुख, चार भुजा, चार हाथों में त्रिशूल, कमल, छः स्वर ।[(1)]

यह माना जाता है कि, वैदिक काल में सातों स्वरों का विकास हो चुका था । किन्तु कुछ अपवादों को छोड़कर सामगान में सप्तम स्वर का प्रयोग होता देखने में नहीं आता ।

वर्तमान समय में श्रुति की स्थिति बदल गई हैं । पहले चतुर्थ श्रुति छंदोवती पर षड्ज स्वर का स्थान था, वह आज प्रथम श्रुति तीव्रा पर है । अतः उसी हिसाब से उसी क्रम के अनुसार (४, ३, २, ४, ४, ३, २) श्रुतियों पर स्वर स्थापना होती है ।

आर्चिक – एक स्वर, गाथिक – दो स्वर, सामिक – तीन स्वर, स्वरान्तर– चार स्वर, औड़व – पांच स्वर, षाड़व – छः स्वर, सम्पूर्ण– सात स्वर ।

उपरोक्त सभी मुद्दे 'स्वर' को बहोत ही गहेराई से समजाते है, स्वर को और विभिन्न स्वर पर जाना जाए तो 'स्वर' की परिभाषा 'संगीत रत्नाकर' में इस प्रकार दी है ।

श्रुत्यनन्तरभावी यः स्निग्धोऽनुरणनात्मकः ।

स्वतोरञ्जयतिश्रोतृचित्तं स स्वर ऊच्यते ॥ [(2)]

अर्थात् – श्रुति के बाद ही सतत मधुर और सुरीली ध्वनि जो तेल की धारा की तरह अटूट और गूंजदार हो और स्वयं बिना किसी की मदद के सुननेवाले को मधुर लगे उसे स्वर कहते हैं ।

हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति में स्वरों के भेद दो भेद दिये गये है : (१) शुद्ध स्वर (२) विकृत स्वर । **'सा रे ग म प ध नी'** – इन सात स्वर जो अपने निश्चित स्थान पर गाए जाते है उसे **'शुद्ध स्वर'** या **'प्रकृत स्वर'** कहते है । उनमें से ''सा'' और ''प'' ये दो स्वर अपने निश्चित स्थान में स्थिर होते है याने कि खिसकते नहीं । अतः उन्हें 'अविकृत', 'अचल' या 'प्राकृत' स्वर कहते है । बाकी के पाँच स्वर अपने निश्चित स्थान से खिसकते है, इसलिये उन्हें **'चल'** अथवा **'विकृत स्वर'** कहते है ।

'सा' और 'प' अपने निश्चित स्थान पर कायम है इसलिये उनके दो रूप या दो स्वर नहीं होते किन्तु **रे, ग, म, ध, नी** ये पाँच स्वर अपने निश्चित स्थान से खिसकते है और उनके हर एक केदो–दो 'सा' या दो–दो 'स्वर' होते है ।

---

1. व्यास, मदनलाल / 'संगीत' मासिक पत्रिका / मार्च –1998 / पृ. 4
2. मिश्र, राजेश्वर / पं. शार्ङ्गदेव कृत संगीत रत्नाकर / पृ. 140

इस तरह जब रे, ग, म, ध, नी – ये पाँच स्वर अपने निश्चित स्थान से खिसके तब वे 'विकृत स्वर' का रूप धारण करते है । उपरोक्त कुछ महत्वपूर्ण शब्दों की परिभाषाएँ देखते है ।

- शुद्ध स्वर या प्राकृत स्वर :

जो स्वर अपने निश्चित स्थान पर पहले से ही स्थिर हैं, उन्हें शुद्ध अथवा प्राकृत स्वर कहते है, जैसे – सा, रे, ग, म, प, ध, नी ।

- विकृत स्वर :

'विकृत' शब्द का सामान्य अर्थ बिगड़ा हुआ स्वर ऐसा होता है । लेकिन संगीत में अपने स्थान से खिसका हुआ यह अर्थ होता है । स्वरों को अपने स्थान से थोड़ा ऊँचा या नीचा किया जाय तब उसे 'विकृत स्वर' कहते हैं । जैसे – रे, ग, म, ध, नी ।

शुद्ध स्वरो में से अगर रे, ग, म, ध, नी को अपने निश्चित स्थान से उपर या नीचे करे तो वह 'विकृत स्वर' कहलायेंगे । विकृत स्वर दो प्रकार के होते है : (१) कोमल स्वर, (२) तीव्र स्वर ।

(१) कोमल स्वर :

जब रे, ग, ध, नी इन शुद्ध स्वरों को उनके निश्चित स्थान से नीचा किया जाय, तब उनको कोमल विकृत कहते हैं । कोमल विकृत का चिन्ह है – नीचे रेखा "रे̱"।

(२) तीव्र स्वर :

जब शुद्ध 'म' को उसके निश्चित स्थान से उपर होकर गाया या बजाया जाए तब उसे 'तीव्र म' कहेंगे । तीव्र स्वर लिखने का चिन्ह है उपर खड़ी रेखा 'म' ।

उपरोक्त मुद्दो को श्लोक में निम्नलिखित तरीके से कहा गया है ।

स्वराः स्वनियत श्रुति प्रच्युता विकृतमताः ।

सपावविकृतावन्ये विकृताः पंचकीर्तिताः ॥ [1]

अर्थात् – स्वरों को उनकी निश्चित श्रुतिओं से ऊपर या नीचे करने से वे विकृत बनते हैं । 'सा' और 'प' विकृत नहीं होते ।

1. मिश्र, राजेश्वर / पं. शार्ङ्गदेव कृत संगीत रत्नाकर / पृ. 140

रि कोमलः कोमलोगौ मध्यमस्तीव्र कामिधः ।

नि धौ कोमलसंज्ञौ च पञ्चैते विकृताः स्मृताः ॥ [1]

अर्थात् इन पाँच स्वरों के विकृत होने पर इतना याद रखना चाहिए कि रे, ग, ध, नि ये चार स्वर विकृत होने से कोमल स्वर कहलाते हैं और 'म' विकृत होने से तीव्र 'म' कहा जाता है ।

'तीव्र' स्वर का साधारण अर्थ है "शुद्ध स्वर"। शुद्ध म को छोड़कर बाकी के शुद्ध स्वर जो अपने स्थान पर पहेले से ही स्थिर है उसे तीव्र स्वर भी कहा जाएगा ।

उपरोक्त संपूर्ण चर्चा को यदी कोष्टक द्वारा समजाया जाए तो वह ज्यादा स्पष्ट होगा ।

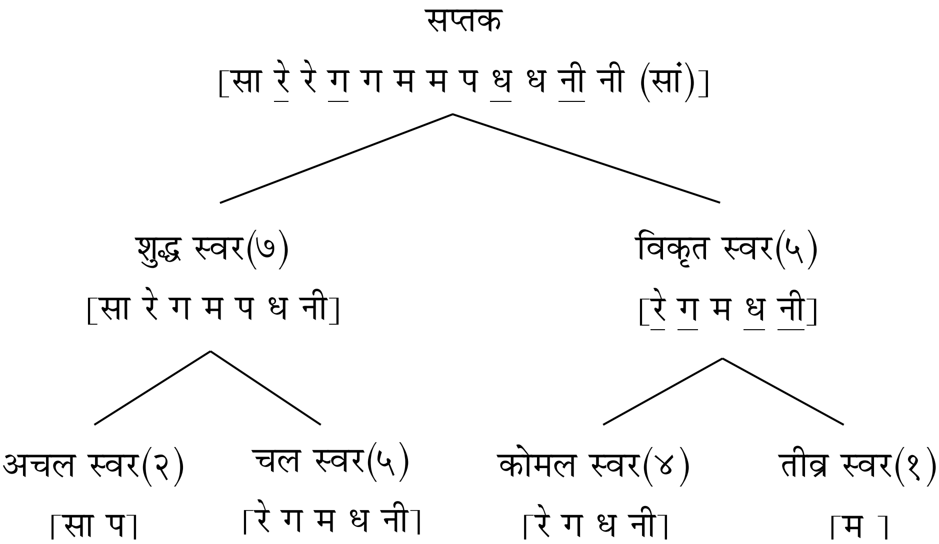

2.3.7 स्वर शारीरिक स्थान

सात स्वरों के नाम षड्ज, ऋषभ, गान्धार, मध्यम, पंचम, धैवत, निषाद । मानवशरीर में ये सातों स्वर किस स्थान से उत्पन्न होता है यह भी दर्शाया गया है । जिसमें –

षड्ज	–	जिहाग्र में (जिभ)	ऋषभ	–	छाती में
गांधार	–	कंण्ठ में	मध्यम	–	जिह्वा के मध्य में
पंचम	–	नासिका में	धैवत	–	दंतोष्ठ में
निषाद	–	भ्रुकुटि में			

1. मिश्र, राजेश्वर / पं. शार्ङ्गदेव कृत संगीत रत्नाकर / पृ. 140

स्थानांग सूत्र में जड़ वस्तुओं में से भी सात स्वर उत्पन्न होते है । उसके बारे में जो विगत दी है वह निम्न अनुसार है ।

षड्ज	–	मृदंग से	ऋषभ	–	गौमुखी में से
गांधार	–	शंख में से	मध्यम	–	झालर में से
पंचम	–	चार पाँव वाले गोधा में से (गोधा एक प्रकार का चर्म वाद्य)			
धैवत	–	आडंबर में से	निषाद	–	बड़ी भेरी में से

2.3.8 स्वर लक्षण

'स्थानांग सूत्र' में सात स्वरों के लक्षण दर्शाये गये है, जो अन्य किसी प्राचीन ग्रंथ में नहीं है, जो निम्नलिखित है । जो मेने डॉ. चंद्रकांत हिराणी की "स्वर से ईश्वर" पुस्तिका में से लिया है ।

(१) षड्ज – आजीविका प्राप्त होती है, कार्य में सफलता मिलती है । वह स्त्री को प्रिय बनाता है और उससे गाय, पुत्र, मित्र की प्राप्ति होती है ।

(२) ऋषभ – सेनापति पद, धन, वस्त्र, सुगंधी, स्त्री, शयन इत्यादि की प्राप्ति होती है ।

(३) गान्धार – स्वरगान करनेवाला, श्रेष्ठ वृत्तियुक्त, कलाविद, कवि और शास्त्रज्ञानी हो सकता है ।

(४) मध्यम – सुख, मौज, शौक एवं भोजन की प्राप्ति होती है ।

(५) पंचम – राज्य की प्राप्ति होती है उससे शूर, संग्राहक और नायक बनता है ।

(६) धैवत – यह स्वर वाला दु:खी होता है और उससे खराब वस्त्र, खराब आजीविका, चोर, चांडाल और मभ्भ की प्राप्ति होती है ।

(७) निषाद – कलह, पग से दौड़ने का योग प्राप्त होता है और वह कासद, भटकनेवाला या भारवाहक बनता है । [(1)]

संपूर्ण विश्व में हर एक संगीत अलग है उनकी विशेषता अलग है, उनके स्वरों के नाम अलग है यदी हिन्दुस्तान की दो पद्धतियो के स्वर की तुलना की जाए तो –

1. हिराणी, चंद्रकांत / स्वर से ईश्वर / पृ. 67

उत्तर हिन्दुस्तानी पद्धति के स्वर	कर्णाटकी पद्धति के स्वर
सा	षड्ज
कोमल रे	शुद्ध ऋषभ
शुद्ध रे	शुद्ध गांधार / चतु:श्रुति ऋषभ
कोमल ग	साधारण गांधार / षटश्रुति ऋषभ
शुद्ध ग	अन्तर गांधार
शुद्ध ग	शुद्ध मध्यम
तीव्र म	प्रति मध्यम
या	पंचम
कोमल ध	शुद्ध धैवत
शुद्ध ध	शुद्ध निषाद / चतु:श्रुति धैवत
कोमल नि	कौशिक निषाद / षटश्रुति धैवत
शुद्ध नि	काकली निषाद

उपरोक्त संपूर्ण चर्चा 'स्वर' के बारे में माहिती प्रदान करती है । 'स्वर' से ही संपूर्ण 'संगीत की दुनिया' का अस्तित्व है । इन स्वरों के ही विभिन्न स्वरूपों से राग गायन, बंदिश, आलाप, तान, झाला इत्यादी सभी गायन शैली बनती है ।

2.4 स्वरों की प्रकृति, स्वभाव एवम् रंग

हर एक स्वर का अलग-अलग रंग, प्रभाव, प्रकृति और स्वभाव होता है और इसी कारण अलग-अलग रागों में अलग-अलग ''रस'' उत्पन्न होता है । मानव जाति के अन्त:करण में निवास करनेवाली विशिष्ट भावनाओं के सतोगुण प्रधान परमोत्कर्ष को ही शास्त्रोज्ञों ने ''रस'' कहा है । संगीत चिकित्सा का आधार उसके ऊपर है । ''संगीत'' पत्रिका के जनवरी-१९५० के अंक में डॉ. जे. पाल द्वारा लिखे हुए ''राग द्वारा रोग निवृत्ति'' नामक लेख में उन्होंने स्वरों के रंग और स्वभाव प्रकृति के बारे में लिखा है ।

षड्जस्याद्भुतौ, वीरौ रिषभस्य च रौद्रकः ।

गन्धारस्य च शान्तं च हास्याख्यं मध्यमस्य च ॥

पंचमस्य श्रृंगारो बीभत्सो धैवतस्य च ।

करुणश्च निषादस्य सप्तस्थाने रसा नव ॥ (1)

अर्थात् – षड्ज में अद्भूत और वीर दो रस हैं, रिषभ में रौद्र रस, गान्धार में शान्त रस, मध्य में हास्य रस, पंचम में श्रृंगार रस, धैवत में बीभत्स रस और निषाद में करुण रस विद्यमान है । यही कारण है कि रोगी की प्रकृति के अनुसार दिया हुआ संगीत तुरंत ही अपना प्रभाव दिखाता हैं । जैसा कि संगीत के प्रभाव पर महर्षि नारद कहते हैं :–

अज्ञात हृदय स्वादुर्बालः पर्यक धारकः ।

रुदनं गीतामृतं पीत्वा हर्षोत्कर्षम प्रपद्यते ॥

वनेचरस्तृणाहारः श्रुत्वा मृग शिशुः पशुः ।

लुब्धो लुब्धक संगीते गीते यच्छति जीवितम् ॥

कृष्ण सर्पोऽपि तं नादम् श्रुत्वा हर्षं प्रपद्यते ।

तस्य गीतस्य माहात्म्य् कः प्रशंसयितुमर्हति ॥

गीतेन प्रीयते देवो सर्वज्ञः पार्वती पतिः ।

गोपी पति रनन्तोऽपि वंश ध्वनिवशं गतः ॥ (2)

अर्थात् वह बालक जिसने अपने हृदय में अभी कोई स्वाद अनुभव नहीं किया, खाट पर रो रहा हो, तो गीत रूपी अमृत पीकर प्रसन्न हो जाता है । बन के पशुओं को शिकारी लोग संगीत द्वारा पाश में बाँध लेते हैं । काले सर्प मुरली वादन पर मस्त हो जाते हैं । संगीत का माहात्म्य कहाँ तक वर्णित किया जाय, त्रिलोकीनाथ श्रीकृष्ण बाँस की पोरी के वश में थे । सर्वज्ञ महादेव नाद में मस्त हैं ।

प्रत्येक स्वर में अपना रस हैं । इसका कारण यह हैं कि प्रत्येक स्वर का स्वभाव और प्रभाव अलग–अलग है । इन में कोई ठंड़ा, कोई गर्म, कोई तर और कोई खुश्क हैं । इनके अलग–अलग रंग, अलग–अलग नक्षत्र और गोत्र हैं ।

1. पाल, जे. / संगीत पत्रिका / राग द्वारा रोग निवृत्ति / पृ. 139
2. लक्ष्मी, एम. विजय / नारदमूनि / संगीत मकरंद / पृ. 79

हमारे प्राचीन शास्त्रकारों ने सप्त स्वरों के रस इस प्रकार बताए है :-

सरी वीरेद्भुते रौद्र धा बीभत्से भयानके ।

कार्यो गनी भु करूणाहास्यश्रृंगारयोमर्यो ॥ (1)

अर्थात् 'सा, रे' - वीर, रौद्र तथा अद्भूत रसों के पोषक है । 'ध' - बीभत्स तथा भयानक रसों के पोषक है । 'ग, नि' - करूण रस के पोषक है । 'म, प' - हास्य व श्रृंगार रसों के पोषक है ।

पं. भातखण्डे जी ने "हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति" में स्वरों के अनुसार रागों के जो तीन वर्ग नियत किए है, उन तीनों वर्गो में पंडित जी ने 'रसों' का समावेश इस प्रकार किया है ।

रे - ध	कोमल वाले संधिप्रकाश रागों में	-	शांत व करूण रस
रे - ध	तीव्र वाले रागों में	-	श्रृंगार रस
ग - नि	कोमल वाले रागों में	-	वीर रस

यद्यपि प्राचीन ग्रंथकारों ने किसी एक स्वर से ही एक रस की सृष्टि बताई है, किन्तु वास्तव में देखा जाए, तो केवल एक ही स्वर से किसी विशेष रस की उत्पत्ति होना सम्भव नहीं । उदाहरणार्थ - षड्ज स्वर को उन्हों ने वीर रस प्रधान तथा पंचम को श्रृंगार रस का स्वर मानता है और हमारे प्राय: सभी रागों में षड्ज व पंचम स्वर अवश्य मिलते है, तो इसका अर्थ हुआ कि सभी राग वीर - श्रृंगार रस प्रधान होना चाहिए थे । किन्तु वस्तुत: एसी बात नही है । अनेक रागों से विभिन्न रसों की सृष्टि होती है । निष्कर्म यही निकलता है कि एक स्वर अपने अन्य सहयोगी स्वरों के साथ मिलकर ही रसोत्पत्ति करने में सफल होता है ।

कोई वादी स्वर अपने संवादी, अनुवादी या विवादी स्वर के सम्पर्क से ही किसी रस की सृष्टि करता है । शास्त्रीय स्वर योजना के अनुसार निश्चित ऋतु में योग्य वातावरण को देखकर श्रोताओं की मनोभावना को समझते हुए कोई राग जब किसी योग्य गायक द्वारा गाया जाए तथा उसके गीत का काव्य भी उस रस के अनुकूल हो तो रस की उत्पत्ति अवश्य होगी, इस में कोई संदेह नहीं । इसके विपरित यदि कोई गायक बीभत्स रस की स्वरावली में शांत रस का गीत गाने लगे, तो रसोत्पत्ति कदापि नहीं हो सकती । जहाँ केवल स्वरों द्वारा ही रस की सृष्टि करनी है, वहाँ गीत को छोड़कर केवल स्वर-लहरी द्वारा भी रसोत्पत्ति की जा सकती है ।

1. शुक्ल शास्त्री, बाबुलाल / भरतमूनि कृत नाट्यशास्त्र / द्वितीय भाग

स्वर और शब्दों से ही गीत का निर्माण होता है और जब गीत में स्वर ही न रहेंगे तो वह शब्दों की एक नीरस रचना मात्र रह जाएगी, जो बिना स्वरों की सहायता के आवश्यक रस की सृष्टि करने में असफल रहेगी । किसी एक ही शब्द द्वारा स्वरों की सहायता से विभिनन रसों को उत्पन्न किया जा सकता है । जैसे 'आओ' यह शब्द लीजिए । इसे जब करूण स्वरों में कहा जाएगा, तो ऐसा मालूम होगा, मानो कोई सहायता के लिए पुकार रहा है, इस प्रकार करूण रस की सृष्टि होगी । और जब इसी शब्द को श्रृंगारिक स्वरों में कहा जाएगा, तो ऐसा प्रतीत होगा मानो कोई प्रेमी अपनी प्रेमिका को बुला रहा है, यहाँ श्रृंगार रस की सृष्टि होगी । कठोरता के स्वरों में इसी शब्द को कहा जाए, मानो लड़ने के लिए दुश्मन को चुनौती दी जा रही है, तब इसी 'आओ' से वीर रस की सृष्टि होगी ।

उपर्युक्त उदाहरणों से यह भलीभाँति प्रकट है कि शब्द से विभिन्न रसों की सृष्टि केवल स्वर भेद के कारण हुई, अतः रसोत्पत्ति का मूल का कारण स्वर ही माना जाएगा । काव्य द्वारा भी रूदन, क्रोध, भय, आश्चर्य तथा हास्य इत्यादि भावो की सृष्टि तभी होती है, जब कि उस कविता का उच्चारण भावानुसार हो और भावानुसार उच्चारण में स्वरों का कुछ – न – कुछ अस्तित्व अवश्य ही होगा । वास्तव में देखा जाए तो प्रत्येक उच्चारण का सम्बन्ध नाद, स्वर और लय से है ।

सिद्धा प्रभावती कान्ता सुप्रभा च मनोहरा ।

साधयन्ति श्रुति षड्जे प्रजापति मुखोद्गताः ॥

शिखा दीप्तिश्चैव उग्रा चाग्नि समुद्भवः ।

श्रुतयः साधयन्त्येन ऋषभं नामतः स्वरम् ॥

हादी च निर्वरी चैव श्रुति व्याहरति संभवे ।

गांधारञ्च साधयतः यथार्थे गुण संश्रये ॥

दिरा सर्व सहा क्षान्तिर्विभूति स्र्यादनन्तरम् ।

मध्यमं साधयन्त्येताः श्रुतयः पृथवि भवाः ॥

मालिनी चपला बाला सर्वरत्ला प्रभावती ।

श्रुतयः सोमपुत्रस्य साधयिष्यन्ति पंचमम् ॥

शान्ता विकलिनी चैव हृदयोन्मादिनी तथा ।

धैवतं साधयन्त्येताः यक्षराज विनिर्मिताः ॥

विसारिणी प्रसूना च निषादेन समुत्थितम् ।

श्रुति साधयते नित्यं यमराज मुखोद्भवा ॥

ज्ञात्वा सर्वमिदं शास्त्रम् यः शृणोति सदा नृप ।

आयुरारोग्यमैश्वर्यं लभते वांछितं फलम् ॥[1]

अर्थात्, षड्ज का रंग गुलाबी कमल–सा होने के कारण उसका स्वभाव ठंड़ा और प्रकृति चित्त को प्रसन्न करनेवाली है, इसलिये यह पित्त के रोगों को दूर करती हैं ।

रिषभ – का रंग हरा और पीला मिला हुआ है । इसका स्वभाव खुश्क और ठंड़ा है । प्रसन्न करनेवाला रिषभ पित्त और कफ प्रधान रोगों को दूर करता हैं ।

गांधार – का रंग स्वर्ण व नारंगी के समान है । इसकी प्रकृति करुणाजनक अर्थात् जिगर खोज़ है । स्वभाव ठंड़ा है । पित्त के रोगों को दूर करता है ।

मध्यम – का रंग पीला और गुलाबी मिला हुआ है । प्रकृति चंचल और स्वभाव गर्म खुश्क है । वात कफ प्रधान रोगों को दूर करता है ।

पंचम – का रंग लाल, प्रकृति जोशीली, स्वभाव खुश्क है । कफ प्रधान रोगों को दूर करता है ।

धैवत – का रंग पीला, प्रकृति योगवादी – अर्थात् चित्त को प्रसन्न करनेवाली और उदासीन दोनों ही हैं । रागों के अनुसार बदलती है । इसी प्रकार इसका स्वभाव भी गर्म और ठंड़ा दोनों प्रकार का हैं ।

निषाद – का रंग लाल है, जो पंचम की लाली से भिन्न है । प्रकृति जोशीली और चित्त को प्रसन्न करनेवाली है । स्वभाव ठंड़ा और खुश्क है ।

हे राजन्, यह सब शास्त्र जानकर हंमेशा सुनता है, वह आयु, आरोग्य और ऐश्वर्य एवं इच्छित फल प्राप्त करता हैं ।

---

1. हिराणी, चंद्रकांत / स्वर से ईश्वर / पृ. 67

उपरोक्त विषय में काफी सारे शास्त्रकारों ने अपने–अपने मत दिये है । ज्यादा से ज्यादा मतों को एक करके में कोष्टक में बताना चाहुँगी ।

स्वर / ग्राम	स्थायी भाव	रस	देवता	ऋषि	जाति	संस्कृत रंग	फाल्ड रंग	नारज जी के रंग
	(भरत नाट्यशास्त्र)		**(भातखंडे जी)**			**(सर एस. एम. टागोर)**		**(नारद जी)**
षड्ज	उत्साह, विस्मय, क्रोध	वीर, अद्दभूत, रौद्र	अग्नि	अग्नि	विप्र	काला	काला	गुलाबी
ऋषभ	उत्साह, विस्मय, क्रोध	वीर, अद्दभूत, रौद्र	ब्रह्मा	ब्रह्मा	क्षत्रिय	बैंगनी	बैंगनी	हरा और पीला
गान्धार	शोक	करूण	सरस्वती	चन्द्रदेव	वैश्य	सुनहरा	लाल	स्वर्ण व नारंगी
मध्यम	रति – हास्य	श्रृंगार – हास्य	शिव	विष्णु	विप्र	श्वेत	संतरी	पीला व गुलाबी
पंचम	रति – हास्य	श्रृंगार – हास्य	विष्णु	नारद	विप्र	पीला	पीला	लाल
धैवत	जुगुप्सा, भय	बीभत्स, भयानक	गणपति	तुम्बरु	क्षत्रिय	भूरा	भूरा	पीला
निषाद	शोक	करूणा	सूर्य	कुबुर	वैश्य	हरा	हरा	लाल

उपरोक्त कोष्टक, संगीत–चिन्तन(प्रथम खंड)(७०)(६४), प्रविण प्रवाह(७२), संगीतशास्त्र (१२५०) इत्यादी पुस्तकों में से एकत्रित करके बनाया है ।

1. संगीत चिन्तन (प्रथम खंड) / पृ. 64, 70

प्रविण प्रवाह / पृ.72

2.5 स्वरों में निहित सौंदर्य

षड्ज (सा) स्वर को तीनों सप्तकों में लिया जा सकता है । मन्द्र, मध्य और तार सप्तक–इन तीनों सप्तकों के स्वरों को ध्यान देकर सुनें तो मन्द्र सप्तक का षड्ज प्रौढ़, गंभीर और शान्त व्यक्तित्ववाला लगेगा, जब कि मध्य सप्तक का 'सा' स्थायित्व देता हुआ, जागृतिप्रेरक लगेगा तथा तार सप्तक का षड्ज युवा, उद्दाम तथा सरल प्रकृति का सूचक और शांतिदायक लगेगा ।

युवक जन का शब्दोच्चार ऊँचे स्वर में, तार सप्तक में तथा द्रुत लय में होगा । जब कि प्रौढ़ वयस्क तथा धीरोदात्त मानव मन्द्र स्वर में, मन्द्र सप्तक में, गंभीरता से विलम्बित गति से शब्दों का उच्चार करता हैं । इस बाबत पर से मनुष्य की प्रकृति तथा स्वभाव का दर्शन किया जा सकता हैं ।

शब्द की वाणी में भाव निदर्शन के लिये व्यंग्य, काकु, अल्प विराम, अर्ध विराम, पूर्ण विराम, प्रश्न, उद्गार आदि का उपयोग किया जाता हैं । उसी तरह संगीत में भी व्यंग्य, काकु, स्वल्प विराम आदि के चिह्नों, स्वरों के उच्चार से बहुत सरलता से दर्शाया जा सकता हैं ।

भारतीय शास्त्रकार पुरातन काल से ही संगीतोपयोगी २२ (बाईस) नादों को मानते आये हैं, जिन्हें शास्त्र में 'श्रुति' कहते हैं । अर्थात् असंख्य नादों में से ज्यादा से ज्यादा २२(बाइस) ऐसे नाद हैं, जो एक दूसरे से अलग और स्पष्ट रूप से सुनकर पहचाने जाते हैं, उन्हें 'श्रुति' कहते हैं । सभी श्रुतियाँ नाद हैं, लेकिन सभी नाद श्रुति नहीं हैं । इन २२ नादों में से संगीतोपयोगी सात स्वरों की उत्पत्ति होती है । ये नाद एक दूसरे से क्रमशः ऊँचे माने जाते हैं । इन २२ श्रुतियों पर सप्त स्वर अर्वाचीन हिन्दुस्तानी पद्धति के अनुसार रखे जायें तो वे १, ५, ८, १०, १४, १८, २१वीं श्रुति पर रखे जायेंगे ।

१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१३	१४	१५	१६	१७	१८	१९	२०	२१	२२ [1]
।				।			।		।				।				।			।	
सा				रे			ग		म				प				ध			नि	

इन सातों स्वरों के सर्व मान्य नाम षड्ज, रिषभ, गांधार, मध्यम, पंचम, धैवत और निषाद हैं, परन्तु स्वरों के पूर्ण उच्चारण लम्बा होने के कारण व्यवहार में उनको सा, रे, ग, म, प, ध, नि संक्षिप्त कर दिया गया हैं ।

---

1. हिराणी, चंद्रकांत / स्वर से ईश्वर / पृ. 59

2.5.1 स्वरों की उपयोगिता

मनुष्य के ऊपर तो संगीत का असर होता है, किन्तु मनुष्येतर प्राणियों पर भी संगीत का प्रभाव पड़ता है । मानव के मन को सहज ढ़ंग से अपने वश कर लेने की दिव्य शक्ति स्वर में होती है । संगीत में दो प्रकार की शक्ति कार्यरत है (१) मनुष्य की अपनी आंतरिक शक्ति (२) स्वर की शक्ति । स्वर में एक स्वतंत्र शक्ति भी हैं और वह विशिष्ट शक्ति हैं । स्वर में दो प्रकार की शक्तियाँ हैं । गौतमीय तंत्र में तो स्वर के अंदर शक्तियाँ होने का कहा गया हैं । स्वर की एक शक्ति ऐसी मानी गई हैं कि स्वर द्वारा मानव के विविध प्रकार के रोग और दु:ख को दूर किया जा सकता है । दूसरी शक्ति यह है कि, वह मानव के अंदर निहित प्राणशक्ति, मन:शक्ति तथा अन्य दिव्य शक्तियों को बढ़ा भी सकती हैं ।

जब स्वर के बारे में शोधकर्ता ने शोध किया तो यह पाया कि, स्वर में रोग निवारण की शक्ति है, ऐसा वैदिक शास्त्रों में प्रतिपादित हुआ है । प्राचीन आयुर्वेद में रोगों की उत्पत्ति के कारण के लिये वात, पित्त और कफ इन तीनों धातुओं की विषमता रोगों की उत्पत्ति का कारण बनती है । जब तक ये तीनों धातुएं समान अवस्था में रहती हैं, तब तक मनुष्य स्वस्थ और नीरोगी रहता है, किन्तु जब उनमें विषमता उत्पन्न होती है, तब बीमारियाँ मनुष्य को घेर लेती हैं । इस तरह उनका वैषम्य रोगों की उत्पत्ति का कारण बनता है । वात, पित्त और कफ के वैषम्य के लिये अनेक कारण हैं मगर उनमें से सब से महत्त्व का कारण मन की अशान्ति तथा क्षुब्धता हैं । जब मानव का मन चिन्ता, शोक, काम, क्रोध आदि आवेगों के कारण अशान्त और क्षुब्ध बनता हैं, तब इन तीनों धातुओं में विषमता आ जाती है और उसके कारण उस मनुष्य को बीमारी और कष्ट आदि घेर लेते हैं । संगीत मानव के मन को शान्त करता है । संगीत से काम, क्रोध आदि आवेग शांत हो जाते हैं । मन को शान्ति मिलने से वात, पित्त आदि की विषमता दूर होती है और साम्यावस्था पैदा होती हैं । इस प्रकार लम्बे समय तक स्वर साधना करने से लम्बे अर्से से बीमार व्यक्ति भी अपने को नीरोगी और स्वस्थ बना सकता है । इस बात को ध्यान में रखकर प्राचीन ऋषियों ने पुरानी से पुरानी बीमारी को दूर करने के वास्ते अलग–अलग 'साम' बताये हैं ।

शरीर एक जीवन्त पिंड हैं । हृदय उसकी शक्तियों का भंडार हैं । वहीं से ही शरीर में तमाम अंगों में शक्तियाँ पहुँचती हैं । मन को एकाग्र करने अथवा लीन करने के लिये स्वर की महान शक्तियों का उपनिषदों में भी स्वीकार किया गया हैं । 'त्रिपुराता धिन्युपनिषद्' में बताया गया हैं कि योगी स्वर द्वारा अपने चित्त को सम्यक् प्रकार में लीन कर देता है अथवा स्वर द्वारा योग का संधान करता है । जब स्वर द्वारा मनुष्य का चित्त किसी वस्तु में या शरीर के किसी भी स्थान के ऊपर केन्द्रित हो जाता है, तब तमाम शक्ति होने के बावजूद वह वस्तु और शरीर के स्थान पर प्रभाव ड़ालता है । शरीर के आंतर चक्रों को खोलना इस प्रकार संभव हो सकता हैं । ज़रूरत है केवल वहाँ मन को ध्यान से केन्द्रित करने की । मन के इस केन्द्रीकरण में स्वर बहुत ही महत्त्व का साधन हैं ।[1]

शोधछात्रा ने शोध दरमियान स्वरों की मानवशरीर पर विविध व्याधि और मानसिक व्याधिओं के बारे में शोध की तो यह निष्कर्ष पर आये कि, मानसिक व्याधिओं से संबंधित उक्त स्वर और अन्य संवादी स्वर के कारण बहुत ही उग्र प्रभावकारी हो सकते हैं । नाद चिकित्सक द्वारा किये गये यह अध्ययन आधुनिक संगीतोपचार पद्धति से बिलकूल अलग है ।

विविध व्याधि के क्षेत्र में संगीतौषधीय दृष्टि से ग्रहों की स्वरात्मक प्रतीकात्मकता के हेतु कोष्ठ में दर्शाये हैं । [1]

कारक ग्रह	**कारक स्वर**	**सहायक ग्रह**	**स्वर बीज**	**प्रभावस्थल**
		<u>वात (वायु)</u>		
शनि (सभी अंगों में रूक्षता उत्पन्न कर वायु पैदा करनेवाला है ।	गांधार निषाद	गुरु बुध राहु	धैवत गांधार निषाद	भेद तांत्रिक तंत्र मस्तिष्क (शनि वायु)

1. हिराणी, चंद्रकांत / स्वर से ईश्वर / पृ. 77

पित्त				
सूर्य	ऋषभ चित्त के सिवा आँख जीवनशक्ति और आत्मबल हेतु के लिय जिम्मेदार ।	मंगल केतु	धैवत षड्ज	शरीर का ताप केन्द्र ऋषभ को प्रभावित करता है । कमर से पग तक ।
कफ				
चन्द्र	पंचम	चन्द्र शुक्र	पंचम मध्यम	

उपर्युक्त निर्देश के संदर्भ में शरीर के केन्द्र नीचे दर्शाये है ।[1]

वायु (वात)

आकाश तत्त्व
(शारीरिक केन्द्र)
मस्तक, कान, कंठ, भेद

आकाश तत्त्व
(शारीरिक केन्द्र)
नाभि मंडल, अध:प्रदेश
(स्नायु मंडल, रीढ, त्वचा)

पित्त (अग्नितत्त्व)

(प्रकोप केन्द्र)

नेत्र, जठर, लिंग, योनि, कफ,

शरीर में प्रभावित
जलतत्त्व केन्द्र
रसना, हृदय, मूत्राशय

शब्द में प्रभावित पृथ्वी तत्त्व
केन्द्र–नाक, फेफड़े, यकृत,
प्लीहा, वृक्क

1. हिराणी, चंद्रकांत / स्वर से ईश्वर / पृ. 78

इसी प्रकार मानसिक व्याधियाँ–जिनका कारण सिंथेटीक–पैरा सिन्थेटीक और ब्रेइन नर्व पर पड़े पंचम (अर्थात् चंद्रमा) और अन्य उक्त संदर्भों में भी स्वर प्रभाव का निम्न स्वरूप ध्यान देने योग्य हैं ।

मानसिक व्याधि		
ग्रह	**स्वर**	
चन्द्र	पञ्चम	ये व्याधियाँ मन से सम्बन्धित हैं ।
शुक्र	मध्यम	ये व्याधियाँ मन से सम्बन्धित हैं ।
बुध	गान्धार	इन व्याधियों का संबंध मस्तिष्क के साथ होता हैं ।
शनि	निषाद	यह मानस में निराशा की उत्पत्ति करता हैं ।

यहाँ यह कहना उचित होगा कि मानसिक व्याधियों से सम्बन्धित उक्त स्वर (ग्रह) और अन्य असंवादी स्वरों (पाप ग्रहों) के कारण बहुत उग्र प्रभावकारी हो सकते हैं । नाद चिकित्सक द्वारा किया गया यह अध्ययन आधुनिक संगीतोपचार पद्धति से बिलकुल अलग हैं एवं 'नाद रसायन' से भी अलग हैं ।[1]

1. हिराणी, चंद्रकांत / स्वर से ईश्वर / पृ. 78

(1)

स्वर	स्वर वृत्ति	स्वर वर्ण	वर्ण रस	तत्त्व	तत्त्व वर्ण	स्वर चक्र	स्वर चक्र स्थए	स्वर चक्र वर्ण	वर्ण प्रभाव	व्याधिकारक
षड्ज	तमात्मक	सर्ववणीपीत	अद्‌भुत वसंत तमात्मक प्रेम	पृथ्वी	पीत	षड्ज चक्र (आधार)	गुदा–लिंग के बीच में	पित्त	थोड़ा गरम प्रकृति गरम	पित्त
ऋषभ	रजात्मक	लाल	रौद्रवीर, मदन	अग्नि	लाल	ऋषभचक्र (मणीपुर)	नाभि के ठीक पिछे	लाल	उग्र	पित्त
गांधार	रजात्मक	शुकहरा	करूण	वायु (रजा)	लीलो	गांधारचक्र (विशुद्धतत्त्व)	कंठ स्थल	हरा	समान ठंडो, उग्र	वायु कफ–पित्त
मध्यम	सतात्मक	कुंदश्वेत	सात्त्विक हास्य	जल	श्वेतनील	मध्यम चक्र (अनाहत)	हृदय	पानी जैसा नीला	ठंडो	वायु कफ
पंचम	तमात्मक	कृष्णनील	हास्य भयानक	आकाश	वादली	पंचम चक्र (आज्ञाचक्र)	भु मध्य	आकाश नील	ठंडो	वायु –कफ
धैवत	सतात्मक	केसरी पित्त	अद्‌भुत करूण सतात्मक प्रेम	आकाश हृदयाकाश	आकाश केसरी पित्त	धैवत चक्र (शून्य चक्र)	सहस्त्रवार	केसरी	थोड़ा गरम	पित्त–वात
निषाद	तमात्मक	सब वर्णो की इन्द्रधनुषि छटा	बीभत्स	वायु	सर्ववर्ण नील	निषादचक्र	लिंग इन्द्रिय के ठीक पिछे	हरा	ठंड़ा	वात–पित्त

1. हिराणी, चंद्रकांत / स्वर से ईश्वर / पृ. 79

भारत में एक वर्ष को छः ऋतुओं में निश्चित कर के विभाजित किया जाता हैं । वसन्त, ग्रीष्म, वर्षा, शरद, हेमन्त और शिशिर । ये छः ऋतुएं वर्ष में कौन से महिने में आती हैं और दिवस के किस भाग में वह ज्यादा (असरकारक) लगती हैं, उसकी माहिती नीचे के कोष्ठ पर से जाना जा सकेगा ।

2.5.2 वर्ष और दिवस की ऋतुओं का मेल :

(1)

वर्ष की छ ऋतुओं के नाम	वह किस किस महिने में आती है ।	दिन के किस भाग में वे ऋतुएं ज्यादा असरकारक हैं ?	हर एक ऋतु में वात, पित्त या कफ में से किस की सत्ता ?
१. वसंत	चैत्र वैशाख	सुबह में १ से १० घड़ी तक	वायु की वृद्धि
२. ग्रीष्म	जेठ आषाढ	दो पहर की ११ से २० घड़ी पर्यन्त	वायु का कोप और कफ की व्याधियों का शमन ।
३. वर्षा	सावन भादों	तीसरे प्रहर की २१ से ३० घड़ी तक	पित्त में वृद्धि
४. शरद	आविश्न कार्तिक	सांझ(प्रदोष) की ३१ से ४० घड़ी तक	पित्त का प्रकोप वायु की व्याधियों का शमन
५. हेमन्त	मृगशीर्ष पोष	मध्य रात्रि की ४१ से ५० घड़ी तक	कफ में वृद्धि और पित्त की व्याधियों का शमन
६. शिशिर	महा फागुन	रात के अन्त में ५१ से ६० घड़ी तक	कफ का प्रकोप

1. हिराणी, चंद्रकांत / स्वर से ईश्वर / पृ. 80

इस कोष्ठ पर से दिन रात से समग्र वर्ष का प्रतिबिंब हैं, यह जाना जा सकेगा । पृथ्वी के ऊपर ऋतुओं के उत्पादक सूर्य चन्द्रादि आकाशी पदार्थ हैं । इन ऋतुओं से प्रभावित मनुष्यों और प्राणियों के देह, नसों और उनमें समाये हुए वात, पित्त ओर कफ के ऊपर उसका असर हो, यह बात स्पष्ट हैं । ऐसा होने से शरीर की जो एक प्रकार की वीणा (गात्र वीणा) हैं, उस में से निकलते स्वर भी शरीर के वात, पित्त और कफ की सत्ता के अनुसार ही उत्पन्न होते हैं । सर्दी या ठंड़ी से नसें सख्त हो जाती हैं, तब उनमें से मन्द्र या गंभीर स्वर ही अच्छे निकल सकते हैं । अतिशय गर्मी से नसें ढीली हो जाती हैं तन तब उनमें से तार स्वर या उच्च स्वर की अच्छी तरह अभिव्यक्त हो सकते हैं । समान सर्दी–गर्मी के कारण ऊँचे या नीचे स्वर ग्रहण कर सकते हैं । ठंड़ी–गर्मी का असर वाजिंत्रों के ऊपर भी पड़ता है, फिर मनुष्य का प्रभावित होना तो बिलकुल स्वाभाविक हैं । इस हेतु से तीन ग्रामों का विभाजन अलग–अलग समय के लिये किया गया हैं । उसमे षड़ज ग्राम दिन के तथा रात्रि के प्रथम भाग में, मध्य ग्राम दिन के और रात्रि के मध्य भाग में तथा गांधार ग्राम दिन तथा रात्रि के अन्त भाग में रखकर गायन के लिये स्वीकृति दी गई हैं ।

डॉ. अरविंदकुमार ने अपनी 'राग–एक अध्ययन' नामक पुस्तक में लिखा हैं :–

प्राचीन काल से ही संगीतज्ञों ने रागों का सम्बन्ध ऋतुओं से स्थापित किया हैं । शारंगदेव ने रागों और ऋतुओं का सम्बन्ध इस प्रकार बताया है –

षड्ज ग्राम	–	**वर्षाऋतु में**
भिन्न कौशिश	–	**शिशिर ऋतु में**
गौड़ पंचम	–	**ग्रीष्म ऋतु में**
भिन्न षड्ज	–	**हेमन्त ऋतु में**
हिन्डोल	–	**वसंत में तथा**
रगन्ती	–	**शरद ऋतु में** (1)

इसके अतिरिक्त रागों का गायन समय का निर्देश भी 'संगीत रत्नाकर' में किया गया है, जिससे विदित होता हैं कि प्राचीन काल में ग्रन्थकारों को रागों को उनके नियत समय पर गाना बजढ ाना मंजूर था ।

1. कुमार, अरविन्द / राग एक अध्ययन / पृ. 78

शोध दौरान शोधकर्ता ने यह जानकारी मिली कि, 'संगीत रत्नाकर' में दिवस तथा रात्रि के भिन्न–भिन्न समय में गाये या बजाये जानेवाले रागों का तथा भिन्न–भिन्न ऋतुओं में गाये जानेवाले रागों का उल्लेख है ।

संगीत के इतिहास में जितने भी ग्रन्थकार हुए, प्राय: सभी ने राग के समय तथा ऋतु सिद्धान्त को स्वीकार किया है । पंडित अहोबल ने अपनी 'संगीत पारिजात' पुस्तक में रागों के समय चक्र का उल्लेख किया है ।इस प्रकार मेघ को वर्षा ऋतु के साथ जोड़ा गया है । वर्तमान संगीत में भी मल्हार तथा उसके प्रकारों को वर्षा ऋतु में विशेषत: गाया जाता हैं । यह नहीं कि वर्षा ऋतु के अतिरिक्त इनका गायन नहीं हो सकता, किन्तु वर्षा ऋतु में मल्हारों का सौन्दर्य विशेष निखरता है । आधुनिक समय में मल्हारों को वर्षा ऋतु के अतिरिक्त रात्रि में गाया बजाया जाता हैं ।

ग्रंथकार श्री कंठ ने भी ऋतु तथा समय के सिद्धान्त को स्वीकारा है । आधुनिक ग्रंथकार विमलकान्तराय चौधरी ने अपने ग्रन्थ 'राग व्याकरण' में राग और ऋतु का संबंध स्थापित किया है । दीपक – ग्रीष्म के लिये, मेघ – वर्षा के लिये और भैरव – शरद के लिये, मालकौंश – शिशिर के लिये, श्री हेमंत के लिये, हिन्डोल – वसंत के लिये ।[(1)]

आधुनिक संगीत में राग ऋतु सिद्धान्त का विशेष महत्त्व नहीं रहा है, किन्तु ऋतुओं में बसन्त तथा वर्षा, राग के गायन तथा वादन की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण ऋतुएं हैं, जिनके अनुसार आधुनिक संगीत में राग गायन प्रचलित हैं ।ऋतुओं के साथ रागों का सम्बन्ध नकारा नहीं जा सकता । गरजते हुए मेघ तथा उमड़ी हुई घटा को देखकर किस संगीतज्ञ का मन न होगा कि वह मल्हार के स्वर न छेड़े । मल्हार तथा उसके प्रकारों को वर्षा ऋतु में विशेष रूप से किसी भी समय गाया बजाया जाता है । मल्हार के लिये 'वर्षासु सुखदायक: ' कहा गया है । इन रागों के गीतों में भी प्राय: वर्षा ऋतु का वर्णन होता है, जो और भी आनन्ददायक होता है ।

प्रकृति में सुदूर तक फैले भिन्न भिन्न फूलों के सौन्दर्य को देखकर तथा प्रकृति में फैली हुई बहार को देखकर बरबस ही गले में बसन्त, बहार, बसन्त–बहार, ये राग विशेषत: बसन्त ऋतु में गाया बजाये जाते हैं । इन रागों के लिये 'बसन्त तौं सुखप्रद:' कहा गया हैं ।

1. कुमार, अरविन्द / राग एक अध्ययन / पृ. 79

वास्तविक दृष्टि से रागों का समय सिद्धान्त तथा ऋतु सिद्धांत राग के गायन–वादन की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण हैं । इसमें रागों के गाने बजाने का समय निश्चित होने से गायक या वादक समय की परिधि में रहता है, अन्यथा कोई भी गायक कोई भी राग किसी भी समय में गाता या बजाता तथा रागों में किसी प्रकार का क्रम नहीं रहता । (1)

याज्ञवल्क्य मुनि ने स्वर के रंग, स्वर के देव, स्वर की जाति, स्वर के अधिष्ठिता मुनि और स्वर के छंद के बारे में निम्न लक्षण बताये हैं ।

वैदिक स्वर

अवरोही

ऩि	सा	रे	ग	म
	(स्वरित)	(अनुरोध)	(उदात्त)	(स्तरित)
म	प	ध	नि	सां
	(स्वरित)	(अनुरोध)	(उदात्त)	(स्तरित)

वैदिक स्वर की श्रुति–स्थान, नाम तथा अवरोही क्रम

श्रुति – अंतर

	● म	कृष्ट
४		
	● ग	प्रथम
२		
	● रे	द्वितीय
३		
	● सा	तृतीय
४		
	● नि	चतुर्थ
२		
	● ध	मन्द्र
३		
	● प	अतिस्वाय

1. कुमार, अरविन्द / राग एक अध्ययन / पृ. 80

वैदिक स्वरों का आरोही स्वरूप

मेरु	नि	म
	सा	प
	रे	ध
	ग	नि
	म	सा

➢ स्वरों के देव :

अग्निमुच्चस्य दैवतम्	उच्च	=	उदात्त	=	अग्नि
नीचैस्सोमो विजानीयात्	नीचा	=	अनुदात्त	=	सोम
स्वरिते सविता भवेत्	स्वरित	=	सविता		

➢ स्वर की जाति :

उदात्तं ब्राह्मणं विद्यात्	उदात्त	=	ब्राह्मणः
नीचं क्षत्रियमुच्यते	अनुदात्त	=	क्षत्रिय
वैश्यं तु स्वरितं विद्यात्	स्वरित	=	वैश्य

➢ स्वर के अधिष्ठाता मुनि :

भारद्वाजमुदात्तकम्	उदात्त	=	भारद्वाज
नीचं गौतममित्याहुः	अनुदात्त	=	गौतम
गार्ग्यं च स्वरितं विदुः	स्वरित	=	गार्ग्य

➢ स्वर के छंद :

विद्यात् उदात्तं गायत्रींम्	उदात्त	=	गायत्री
नीचं त्र्यैष्टुभमुच्यते	अनुदात्त	=	त्रैष्टुभ
जागतं स्वरितं विद्यात्	स्वरित	=	जागतम् (जगती)[1]

1. हिराणी, चंद्रकांत / स्वर से ईश्वर / पृ. 89

2.5.3 षड़ज स्वर में निहित सूर्यशक्ति

समस्त संसार को ज्योति प्रदान करनेवाले भगवान भास्कर के रथ का चक्र घूमते है और उसमें से ध्वनि उत्पन्न होती है । यह ध्वनि ब्रह्मांड के तरंगों में तरंगित होकर जड़-चेतन सृष्टि को प्रभावित करती है । सुमधुर नाद संगीतोपयोगी हैं । मानव शरीर में यह नाद उत्पन्न करनेवाली बाईस नाड़ियाँ हैं, जिन्हें संगीतज्ञ श्रुति कहते हैं । इन चार श्रुतियों पर ४-३-२ के अंतराल पर सात स्वर स्थापित हुए हैं । इन सब में षड्ज स्वर विशेष शक्तिशाली हैं । उसके गंभीर मधुर ध्वनि पर गर्मी, ठंड़ी और वर्षा आदि का प्रभाव नहीं हैं, इससे वह अचल स्वर माना जाता है । संगीतज्ञ पंचम को भी अचल स्वर मानते हैं । मगर मध्यम ग्राम के स्वर सप्तक में उसका स्थान परिवर्तित होता है इससे वह अच्युत - पंचम है । स्वर - षड्ज पर पूर्ण रूप से सूर्यनारायण की कृपा है । सूर्य की सात किरणें सात घोड़ों के रूप में हैं । प्रथम किरण सुषुम्णा है, जो मानव शरीर में नाड़ी है । पूर्व दिशा में जब सूर्य उदित होता है, तब सुषुम्णा किरण का प्रभाव पृथ्वी के जड़ - चेतन पदार्थों पर पड़ता है । पूर्व दिशा के रंग के अनुसार षड्ज का रंग भी गुलाबी है । सुबह के वातावरण में प्राणी मात्र का मन शान्त और फुर्तिला होता है । षड्ज का स्वभाव शांत है । सुबह में समुद्र भी धीर गंभीर लगता है । इससे वायु पुराण में इस स्वर का असर गंभीर दर्शाया गया है । मानव शरीर में षड्ज का केन्द्र नाभि है और वहाँ अग्नि का निवास है । षड्ज का देव भी अग्नि है, जिस में सूर्यदेव बिराजमान है । अग्नि शिखा की तरह इस स्वर का ध्वनि प्राणी मात्र को प्रकाशित और आनंदित करता है ।

छंदोवती श्रुति पर स्थित यह स्वर छन्दबद्ध है । छन्द का अर्थ छेदन करना' भी किया जाता है । छन्दोवती चौथी श्रुति है जिसके पहले तीव्रा, कुमुदवती, मंदा श्रुतियाँ हैं । तीव्रा श्रुति का स्थान मूलाधार कमलदल पर है । मूलाधार और नाभिकेन्द्र के बीच कुमुदवती और मंदा स्थित है । षड्ज की ध्वनि मंदा और कुमुदवती को छेदन कर के तीव्रा के साथ संबंध स्थापित करती है, जहाँ कुंडलिनी स्थित है । इससे इस स्वर की उचित साधना से मोक्ष प्राप्ति हो सकती है । इस स्वर का शस्त्र फरसी है । जिस तरह भगवान परशुराम ने अपने शस्त्र फरसी से २१ बार धरती को नक्षत्री की थी, उसी तरह २२ में १ श्रुति पर स्थित षड्ज अपने शस्त्र से बाकी श्रुतियों पर एक चक्री शासन करता है । उसका वाहन नंदी है, जो भगवान शंकर का भी वाहन हैं । इससे इस स्वर में शिव की

शक्ति समाविष्ट हैं । षड्ज स्वर को बीजमंत्र **'ॐ'** की उत्पति का कारण माना जाता है और स्वयं **'ॐ'** कार ही ब्रह्मा, विष्णु, महेश की त्रिमूर्ति का प्रतिनिधित्व करता है । सूर्य में ब्रह्मा, विष्णु और महेश के अंश समाये हुए हैं । मंद्रा श्रुति को प्रभावित करते समय षड्ज करने समय षड्ज स्वर ब्रह्मा, कुमुदवती विष्णु तथा तीव्रा को शिव प्रभावित करते हैं । शास्त्रकारों ने इस स्वर की जन्मभूमि जम्बु द्वीप तथा जन्म तिथि सप्तमी मानी हैं । द्यु-लोक का जम्बु द्वीप सूर्य है तथा भूलोक का भारत । सप्तमी सूर्य नारायण की प्रमुख तिथि है और यही तिथि षड्ज की भी है और वार रविवार है ।

इस तरह शोधकर्ताने यह जाना कि, विविध प्रकार से षड्ज का संबंध सूर्य के साथ हैं । इससे षडज् में सूर्य शक्ति का अनुभव होता है । षड्ज का उच्चारण करनेवाला पक्षी मोर है । उसकी ध्वनि का संबंध आभा मंडल के साथ है । उससे बरसात होने की सूचना देती है ।

पश्चिम के विद्वानों ने इस स्वर को २४० कंपन संख्या पर स्थित किया है । विज्ञान भी स्वर की उत्पत्ति नाद से मानता हैं । नाद की उत्पत्ति वायु और अग्नि के सहयोग से होती है । आधार योग का हो या विज्ञान का, इस स्वर का संबंध हर एक प्रकार से सूर्य के साथ निर्विवाद रूप से रहा हैं ।

हर एक स्वर स्वयं में खूबसुरत रंग-रस से सम्पन्न होते है । किन्तु सिर्फ एक स्वर सारे रस या भाव उत्पन्न नहीं कर सकता । जब स्वर एक-दूसरे से मिलकर, संगति बनाते है तब रसों की परिभाषा ही बदल जाती है । जिससे संगीत संपूर्ण बनता है । 'गायन', 'वादन' में स्वरों के बहोत से रूपों का हम प्रयोग करते है जो रस-भाव-सौंदर्य उत्पन्न करते है ।

'संगीत रत्नाकर' में नाद को २२ श्रुतियों में विभक्त किया है । ये श्रुतियाँ कान से अनुभव करानेवाली विशिष्ट शक्ति तरंगें हैं । उनका प्रभाव मनुष्य के शरीर और चेतना पर पड़ता है । इन बाईस श्रुतियों के नाम इस प्रकार हैं :-

(१) तीव्रा (२) कुमुदवती (३) मन्दा (४) छंदोवती (५) दयावती (६) रंजनी (७) रक्तिका (८) रौद्री (९) क्रोधा (१०) व्रजिका (११) प्रसारिणी (१२) प्रीति (१३) मार्जनी (१४) क्षिति (१५) रक्ता (१६) सांदीपनी (१७) अलापिनी (१८) मदन्ती (१९) रोहिणी (२०) रम्या (२१) उग्रा (२२) क्षोभिणी ।[1]

1. हिराणी, चंद्रकांत / स्वर से ईश्वर / पृ. 87

ये बाईस ध्वनि शक्तियाँ का सात स्वरों के रूप में संबंध है, जिसका विभाजन इस प्रकार है ।

षड्ज : ''सा'' तीव्र, कुमुदवती, मंदा, छंदोवती

ऋषभ : ''रे'' दयावती, रंजनी, रक्तिका

गान्धार : ''ग'' रौद्री, क्रोधा

मध्यम : ''म'' व्रजिका, प्रसारिणी, प्रीति, मार्जनी

पंचम : ''प'' क्षिति, रक्ता, सांदीपनी, अलापिनी

धैवत : ''ध'' मदन्ती, रोहिणी, रम्या

निषाद : ''नि'' उग्रा, क्षोभिणी ।

पश्चिम के विद्वानों ने एक ऐसे यंत्र (Syren) की खोज की है, जिसकी सहायता से हम किसी भी ध्वनि के कंपनों को कुछ अंश में जान सकते हैं । इस यंत्र की सहाय से उसके स्वरों का कंपन जाना गया हैं और उसे तुलनात्मक क्रम से 'संगीत' पत्रिका के सितम्बर, १९४६ के अंक में पं. डी. के. जोशी (पुना) द्वारा विवेचित और भगवत्शरन शर्मा द्वारा लिखे गये– ''आर्य संगीत के संस्कृत ग्रंथों में शुद्ध स्वरों का महत्त्व'' नाम हिन्दी में लिखे हुए लेख में बताया हैं ।

	सा	**रे**	**ग**	**म**	**प**	**ध**	**नि**
रामामात्य –	२४०,	२५६,	२७०,	३२०,	३६०,	३८८,	४०५
अहोबल –	२४०,	२७०,	२८८,	३२०,	३६०,	४०५,	४५२
चतुर पंडित –	२४०,	२७०,	३००,	३२०,	३६०,	४०५,	४५० [1]

उपर्युक्त कंपन संख्या पर से यह जानने को मिलता है कि स्वर सा, म और प के केवल नाम में ही समानता न थी, परन्तु उनके कंपनों की संख्या भी एक जैसी थी । बाकी चार स्वर रे, ग, ध और नि के शुद्ध स्वरों के नामों में तो इन तीनों विद्वानों ने समानता देखी है, किन्तु कंपन संख्याओं में अन्तर था ।

इन बाईस श्रुतियों को गायन द्वारा उत्पन्न होनेवाले भौतिक और चेतनात्मक प्रभाव ही समझना चाहिये । जिस तरह औषधियाँ मूल द्रव्यों के रासायणिक सम्मिश्रण से उत्पन्न होनेवाले अधिक प्रभाव

1. जोशी, डी. के. / 'संगीत' पत्रिका / सितम्बर – 1946 / पृ. 406

के कारण विभिन्न रोगों पर अपना प्रभाव उत्पन्न करती हैं, उसी तरह इन बाईस श्रुतियों की शक्ति का, उनके सम्मिश्रण का, वस्तुओं और प्राणियों पर प्रभाव पड़ता है । इन तमाम खोजों का मूल झरना सामवेद है । वैदिक काल में इस रहस्यमय विज्ञान के जानकार लोग मंत्र गायन, भाव मुद्राओं और रसानुभूतियों के आधार पर अपने अन्तर में दबी हुई शक्तियों को जागृत करते थे और अपने संसर्ग में आनेवाले प्राणी मात्र की व्यथा दूर करते थे । जड़-चेतन प्रकृति को प्रभावित करके वे अवांछनीय परिस्थितियों को बदल कर अनुकूल वातावरण उत्पन्न करने में चमत्कारिक सफलता प्राप्त करते थे । अनाहत नाद के रूप में वर्णित करने का प्रयास भी किया जाता है । ॐ कार की ध्वनि 'प्रणव' भी इसी दिव्य संगीत को कहा जाता है । इसलिये शास्त्रों में स्थान स्थान पर प्रणव की महत्ता गाई गयी है । गीता में कहा है - 'प्रणवः सर्व-वेदेषु' (७/८) महाभारत में कहा हैं कि 'ओंकारः सर्व वेदानाम्' (अश्वमेघ पर्व ४४/६) ओंकार का गायन और उद्‌गीथ समानार्थक हैं । वाणी का रस ऋचा है, ऋचा का रस साम है ।

श्री सुनिलभाई मोदी जी के मतानुसार किसी भी गीत या रचना में कुल २१ मुद्दे होते है, जिनसे वो रचनाओं में प्राण आते है जिससे वह 'सुंदर' बनते है । जिसकी पृष्ठी सभी गुणीजनों ने दी है, जो निम्न लिखित है ।

१) कर्ण स्पर्श : सिर्फ स्वरों से राग नहीं बनता, वो स्वरों को कण स्वरों से स्पर्श करके हि संपूर्ण राग कर्णप्रिय को जाती है ।

२) ठहराव (Pose) : किसी भी गायकी में किसी मुख्य स्वरों पर रूकना, ठहराव करना गायकी को खुबसुरती प्रदान करता है, जो अत्यंत ज़रूरी है ।

३) मींड -घसीट-खींच : यह सारे मींड के विभिन्न प्रकार है । एक स्वर से दुसरे स्वर तक, बीच के सारे स्वरों का स्पर्श करते जाने को मींड कहते है ।

४) खटका-मूर्की-गमक : यह सब गले की कलाकारी है, स्वर को विभिन्न प्रकार से लगाकर चमत्कारीक्ता लाई जाती है ।

५) पुनरावर्तन : किसी निश्चित स्वर का पुनरावर्तन राग को निश्चित रूप देता है, जिससे गायकी में वजन आता है ।

1. हिराणी, चंद्रकांत / स्वर से ईश्वर / पृ. 101

६) लाग–दाट : एक ही स्वर को अलग–अलग सप्तक में लगाना वो हे लाग । सा– सां – सा और दाट यानी की रूकना – स्थिर रहना ।

७) काकु प्रयोग : स्वरों के साथ साथ शब्दो के उच्चारण में बदलाव लाने से संपूर्ण स्वरों एवं शब्द का अर्थ थी बदल जाता है । उसे ''काकु प्रयोग'' कहते है ।

८) अल्पत्व–बहुत्व–न्यासत्व : स्वरों की ज्यादा या कम लगावट में भी स्वरों की खुबसुरती बदलती पाई जाती है । यदी किसी स्वर का बहोत कम प्रयोग किया जाए, तब वह अलग प्रकार निखार लाता है, वैसे ही किसी या ज्यादा प्रयोग किया जाए तो अलग दिखाई पडता है । तो कम प्रयोग को 'अल्पत्व' और ज्यादा प्रयोग 'बहुत्व' कहते है और जब किसी स्वर पर ठहरा जाए तो उसे 'न्यासत्व' कहते है ।

९) वादीत्व–संवादीत्व : किसी राग में किसी स्वर को ज्यादा महत्व दिया जाए, बार बार उस को गाया जाए तो वह स्वर, उस राग का 'वादी स्वर' कहेलाता है और वह स्वर के बाद किसी स्वर को महत्व दिया जाए तो वह 'संवादी' स्वर कहलाता है ।[1]

स्वरों की इस महत्वता से एक संपूर्ण राग बंधता है, अपनी प्रकृति बनाता है । एक भी स्वर का महत्व बदलने से सम्पूर्ण राग का अस्तित्व बदल सकता है ।

१०) विवादी स्वर : यदी इस शब्द की परिभाषा को देखा जाएँ तो जो स्वर शास्त्रात्मक तरीके से राग में वर्ज्य हो किन्तु फिर भी गुणीजन वैसे स्वर का प्रयोग राग में करे और वह स्वर राग की सुंदरता में वृद्धि करे तो उसे 'विवादी स्वर' कहते है । स्वर का यह प्रकार संगीत में गायन / वादन में चार चाँद लगा देता है ।

---

1. हिराणी, चंद्रकांत / स्वर से ईश्वर / पृ. 118

११) आर्वीभाव–तीरोभाव : जिस तरह हमने उपर जाना कि स्वरों के निश्चित समुह से 'एक राग' बंधता है, उसी तरह जब एक राग में अन्य किसी राग के स्वरों को गा कर वह दुसरे राग की छाया दिखाई जाए उसे 'आवीर्भाव' कहा जाता है और वापसे पहले राग कर आने को 'तीरोभाव' कहा जाता है । यह प्रकार स्वरों के प्रभुत्व को बताता है कि सिर्फ कुछ स्वर बदलने से संपूर्ण राग बदल सकता है और वापस पुराना स्वरूप ले सकता है ।[1]

१२) आंदोलन : किसी भी स्वर को कणयुक्त बार बार दोहराया जाए तो उसे आंदोलन किया कहते है । जैसे कि ^{ग}रेऽऽ ^{ग}रेऽऽ ^{ग}रे । आंदोलन स्वर बेहद आकर्षक एवं खास स्वरूप होते है ।

१३) लहक : गुणीजनों ने गायकी में स्वरों की बेहद मनोरंजक रचना की है, जिसमें कुछ स्वरों को दुगुन में गाने को लहक कहते है । जैसे की (सा) – साऩीरेसा ।

१४) आस (मींडयुक्त आस) : स्वर को गाने के बाद उनकी आस भी असरयुक्त होती है । कोई स्वर पर रूकने के बाद जो स्वर की गुंज सुनाई देती है वह है आस।

१५) दुनक (मींड बीना की आस) : किसी स्वर को बीना मींड लिए छोड देना – वह दुनक कहा जाता है ।

१६) राग वाचक संगती : स्वरों की क्षमता, उनकी संगती से बढती है । जब राग की महत्वपूर्ण स्वर मिलकर संगती बनाते है तो वह बहोत सौंदर्यपूर्ण लगते है ।

१७) बीडार अंग : 'बीडार' यानी की घना जंगल । तो घने जंगल की तरह स्वरों को चीपक– चीपक के पास–पास लगाना स्वरों की यह खुबसुरती अलग ही नज़र आती है ।

१८) डगर अंग : रास्ते की तरह स्वरों को एक के बाद एक गाने की रीति को 'डगर अंग' कहते है ।

---

1. हिराणी, चंद्रकांत / स्वर से ईश्वर / पृ. 122

१९) आमद : 'सम' पर जो अलग–अलग टुकड़े ले कर आया जाता है वो टुकड़े को 'आमद' कहा जाता है, उसमे सम पर आने की खुबसुरती दिखती है । (सामान्यतः ये शब्द नृत्यकला में प्रयुक्त होता है।)

२०) उच्चारण भेद : जिस तरहा आगे बताया कि स्वरों के साथ–साथ शब्दों का उच्चारण भी माइने रखता है । इकार–आकार–उकार का प्रयोग करने से गायकी रसात्मक बनी रहती है ।

२१) गाज़ : आवाज़ में वजन – गुंज – ज़वारी लानी ।

उपरोक्त २१ मुद्दे स्वरों में निहित सौंदर्य को बखुबी बहार लाते है और यदी स्वर की शक्ति, सौंदर्य को ज़रा नज़रिया बदलते हुए देखा जाए तो कुछ इस प्रकार से सोचा जाएगा जो की डॉ. चन्द्रकांत हिराणी जी ने अपनी पुस्तक 'स्वर से ईश्वर' में अंकित किया है ।

2.5.4 स्वर अलंकार

संख्या	स्वरों की संख्या	जाति	कुछ प्रस्तार
१	सा	आर्चिक	१
२	सा रे	गाथिक	२
३	सा रे ग	सामिक	६
४	सा रे ग म	स्वरान्तरा	२४
५	सा रे ग म प	औड़व	१२०
६	सा रे ग म प ध	षाड़व	७२०
७	सा रे ग म प ध नि	सम्पूर्ण	५०४०

सात स्वरों का आपस में गुणाकार करने से ५०४० अलंकार बनते हैं ।

१ x २ x ३ x ४ x ५ x ६ x ७ = ५०४०

सा x रे x ग x म x प x ध x नि

आर्चिक में केवल एक ही स्वर हैं इसलिये उसका एक ही अलंकार बनेगा । गाथिक में सा x रे = दो, सारे, रेसा–दो अलंकार बनते हैं । सामिक में सा x रे x ग=६,सारेग, सागरे, रेसाग, रेगसा, गसारे, गरेसा इस तरह छः अलंकार होते हैं । इसी पद्धति से बाकी के अलंकार बनते है ।(1)

1. शर्मा, जयेन्द्र / 'संगीत' अंक / डीसेम्बर–48 / पृ. 638

2.5.5 वादी स्वरों का राग के समय के साथ संबंध

हिन्दुस्तानी संगीत का यह नियम है कि वादी स्वर सप्तक के पूर्वांग में अर्थात् **'सा रे ग म'** में से कोई स्वर हो तो वह राग दिन के पूर्वार्ध मतलब दिन के बारह से रात्रि के बारह बजे तक गाया जाता है । उससे विपरीत जिन रागों में वादी स्वर सप्तक के उत्तरांग में यानी **'प ध नि सा'** में से कोई हो, तो वह राग दिन के उत्तरार्ध मतलब रात्रि के बारह बजे से दिन के बारह बजे तक गाया या बजाया जा सकता है । उदाहरण : बिलावल राग में धैवत स्वर वादी है, इससे उसे गाने का समय दिन के उत्तरार्ध में है । इसी प्रकार कल्याण राग में गांधार स्वर वादी होने से दिन के पूर्वार्ध में गाया जाता है ।

2.5.6 पूर्वांग और उत्तरांग का क्षेत्र विस्तार

वादी–संवादी के विषय में यह नियम है कि सप्तक के दोनों हिस्से में से क्रमश: एक स्वर वादी और दूसरा स्वर संवादी होता है । अगर वादी स्वर सप्तक के पहले हिस्से में से लिया हो, तो संवादी स्वर सप्तक के दूसरे हिस्से या उत्तरांग में से ही लेना अनिवार्य है । इसी तरह वादी स्वर सप्तक के दूसरे हिस्से यानी उत्तरांग में हो तो संवादी सप्तक के पूर्वांग में होना ज़रूरी है । वादी और संवादी में हमेशा तीन या चार स्वरों का अंतर होता है । उदा: वादी स्वर रिषभ (रे) हो तो संवादी पंचम (प) अथवा धैवत (ध) होता है । इसी प्रकार वादी स्वर धैवत (ध) हो, तो संवादी स्वर रिषभ (रे) अथवा गांधार (ग) दोनों में जो स्वर राग में ज्यादा उपयोगी हो, वह संवादी के रूप में लिया जाता है ।[1]

भीमपलासी राग में मध्यम (म) वादी और तार षड्ज (सा) संवादी है । अगर सप्तक के पूर्वांग का क्षेत्र 'सा' से 'म' तक माना जाय, तो वादी संवादी स्वर सप्तक के एक ही हिस्से में आ जायेंगे, जो उपर्युकत नियम का अपवाद माना जायेगा । उपर्युक्त समस्या को हल करने के लिये सप्तक के दोनों भाग पूर्वांग और उत्तरांग का क्षेत्र बढ़ाया गया । सप्तक का पूर्वांग 'सा' से 'प' तक और उत्तरांग 'म' से 'सां' तक माना गया । इससे 'म' और 'प' दोनों भागों में सामान्य (Common) रहेंगे ।

1. हिराणी, चंद्रकांत / स्वर से ईश्वर / पृ. 108

ऐसा करने से यह सुविधा रहेगी कि किसी राग में 'सा' और 'प' वादी–संवादी होंगे तो पंचम उत्तरार्ध में है यह माना जायेगा । इसी तरह किसी राग में 'प' और 'सां' वादी–संवादी हो, तो पंचम पूर्वांग में है ऐसा माना जायेगा । इस प्रकार वादी–संवादी में से एक स्वर पूर्वांग में और दूसरा उत्तरांग में होता है ।

(१) बोल आलाप और बोलतान

जब गीत के शब्दों को लेकर आलाप किया जाय तब उसे बोल आलाप और जब तान में गीत के शब्दों का प्रयोग होता है, तब उसे बोलतान कहा जाता है । सामान्यतया बोल आलाप के दो प्रकार है । (१) लयबद्ध (२) लयरहित ।

(२) खटका और मुरकी

किसी भी स्वर को दो बार त्वरित गति से आगे और पीछे अर्थात् ऊपर और नीचे के स्वरों का कण लेकर गाया या बजाया जाय उसे खटका कहते हैं । उदाहरण : (सा) मतलब $^{\text{रे}}$**सा**$^{\text{नि}}$**सा** अथवा **रेसानि़सा** । जिस स्वर के ऊपर खटका लेना हो, उसे कौंस के स्वर से अथवा आगे पीछे से त्वरित गति में किया जाता है । यह स्वर समाप्त होने से कौंस भी समाप्त होता है । खटका और मुरकी में केवल स्वरों की संख्या का फर्क है । मुरकी में द्रुत गति में तीन स्वरों का एक अर्धवृत्त बनाया जाता है । $^{\text{रे}}$नि़$^{\text{सा}}$ अथवा $^{\text{ध}}$म$^{\text{प}}$ और 'खटका' में चार अथवा पाँच स्वरों का अर्धवृत्त बनाया जाता है । मुरकी लिखने के लिये मूल स्वर के ऊपर बाँयी तरफ एक स्वर का कण और दायीं तरफ भी एक स्वर का कण दिया जाता है । उदाहरण : $^{\text{ध}}$प$^{\text{म}}$ मुरकी का प्रयोग ठुमरी और टप्पा में ज्यादा होता है ।

2.5.7 स्वर लगाव

गायकी में स्वर लगाने का स्थान बहुत महत्त्वपूर्ण है । किसी राग में उसके स्वरों के साथ किसी अन्य स्वर की योजना अत्यंत मधुर, आकर्षक एवं रंजक होती है । इन सब बातों का समावेश 'स्वर लगाव' के अंतर्गत किया जाता है । स्वर–लगाव के अंतर्गत वादी–संवादी, अल्पत्व, बहुत्व तथा न्यास के स्वरों पर विशेष ध्यान दिया जाता है । समान वादी–संवादी स्वरवाले रागों को अल्प प्रमाण–बहु प्रमाण एवं न्यास स्वर द्वारा ही अलग–अलग किया जाता है । समप्रकृतिक रागों के

1. हिराणी, चंद्रकांत / स्वर से ईश्वर / पृ. 109

प्रभाव से बचने के लिये राग के मुख्य स्वरों का बार–बार प्रयोग करने को सर्वोत्तम 'स्वर लगाव' माना जाता है । स्वर लगाव के आधार पर सिद्धहस्त गायक विवादी स्वरों का प्रयोग ऐसी कुशलता से करता है कि राग को हानि भी नहीं होती और राग–वैचित्र्य तथा चमत्कार भी उत्पन्न होता है । स्वर लगाने की क्रिया में कुशल संगीतज्ञ ही राग का आविर्भाव और तीरोभाव करने में सफल होता है । इससे गायकी के निमार्ण में स्वर–लगाव का स्थान बहुत ही महत्त्वपूर्ण माना जाता है ।

2.5.8 स्वर या आवाज़ का लगाव

घरानेदार गायन पद्धति में महत्त्वपूर्ण बात स्वर या आवाज़ का लगाव है । गायन पद्धति गायक की कण्ठ–ध्वनि पर आधारित होती है । प्रत्येक घराने का गायक अपने कण्ठ को विशिष्ट प्रकार से तैयार करता है । सभी घराने अपने प्रवर्तकों के आवाज़ पर आधारित होते है । आवाज़ तैयार करते समय गुरू अपने कण्ठ की विशेषताएँ शिष्य में भी उतारने की चेष्टा करता है ।

घराने के प्रवर्तक की आवाज़ में मूलतः यह गुण होगा जिसे अधिक परिश्रम से उसने अपना वैशिष्ट्य बना लिया । जो भी शिष्य तैयार हुए उन सबकी आवाज़, से मिलती–जुलती न होने पर भी परिश्रम से उन्होंने अपनी आवाज़ को घराने के अनुरूप बनाया । प्रत्येक घरानें ने स्वर–साधना द्वारा अपनी गुरू परंपरा को आगे बढ़ाया है ।

2.5.9 स्वर लेखन पद्धति

- शुद्ध स्वर : कोई संकेत नहीं ।
- कोमल स्वर : स्वर के नीचे रेखा (जैसे रेगधनि)।
- तीव्र स्वर : म
- मंद्र सप्तक : स्वर के नीचे बिंदु (जैसे ऩि ध़ प़ आदि)।
- तार सप्तक : स्वर के ऊपर बिंदु (जैसे सां रें गं मं आदि)।
- सम : x

- खाली : o
- ताली : अंक, जो दर्शायेगा ताली का क्रम (जैसे २, ३, ४ आदि)।
- अवग्रह (ऽ) या (–) का चिह्न : अंतराल या अवकाश ।
- खंड : । का चिह्न
- मींड : एक स्वर से दूसरे स्वर तक लगातार रेखाजैसे प रे ।
- कणस्वर : स्वर के उपर स्वर (जैसे पमग) ।
- ‿ : यह चिह्न मात्रा के अंतर्गत स्वरों को दर्शाता है ।
- (प) : को पधपप या (म) – को मपमम या मपगम समझा जाय ।(1)

2.6 सप्तक

'सप्तक' का अर्थ है 'सात', क्योंकि एक स्थान पर सात शुद्ध स्वर निवास करते हैं, अतः इसका नाम 'सप्तक' हुआ । ध्वनि की साधारण ऊँचाई में जब मनुष्य बात करता है अथवा 'अ ऽ ऽ ऽ' इस प्रकार आलाप लेता है, तो उसे 'मध्य–सप्तक' कहते हैं, किंतु जब कभी गाने–बजाने में नीचे आवाज ले जाने की आवश्यकता होती है, तो वहाँ 'मंद्र–सप्तक' के स्वर काम देते हैं और जब मध्य– सप्तक से भी ऊँचा गाने की आवश्यकता पड़ती है, तब 'तार–सप्तक' के स्वर प्रयुक्त होते हैं ।

मंद्र–सप्तक के स्वरों को बोलने में हृदय पर, मध्य–सप्तक के स्वरों को बोलने में कंठ पर और तार–सप्तक के स्वरों को बोलने में तालू पर जोर लगाना पड़ता है ।

मुख्य सात स्वर क्रमानुसार एक के बाद एक पंक्तिबद्ध लिखने, रखने या गाने से 'सप्तक' का रूप बनता है । इस सप्तक को हिंदुस्तानी संगीत–पद्धति में बिलावल सप्तक कहते हैं तथा इस सप्तक के सात स्वरों को शुद्ध स्वर कहते हैं । क्योंकि प्रथम स्वर तीन श्रुतियों का था अतः अन्य स्वरों में भी तीन–तीन श्रुतियाँ लगाई गई । मध्यम स्वर (Middle Note) एक श्रुति का स्वर है । यह स्वर तीन श्रुतियाँ जोड़ देने पर चार श्रुतियों का स्वर बन गया है । इसके दोनो और तीन तीन

1. हिराणी, चंद्रकांत / स्वर से ईश्वर / पृ. 101

श्रुतियों के तीन–तीन स्वर है । इस प्रकार दोनों ओर कुल 9-9 श्रुतियाँ और तीन–तीन स्वर है । पांच स्वरों के सप्तक की भाँति एक श्रुति को पूर्ण नहीं समझा गया । अत: उनके स्थान पर तीन श्रुतियों का अतिरिक्त स्वर जोड़ दिया गया और एक श्रुति–स्वर अब कुल चार श्रुति स्वर बन गया । इसी प्रकार सात स्वरों के सप्तक में दो, तीन– तीन श्रुतियों के दो स्वर और जोड़ दिये गये । इनमें से एक स्वर स्वरित के ऊपर और एक नीचे जोड़ा गया । इनके नाम उदात्तम और अनुदात्तर रखे गये । इस प्रकार दो जोड़ने से सात स्वर बन गए । इनके नाम निम्न प्रकार से है :–

१.	उदात्तम	२.	उदात्तर	३.	स्वरित	४.	उदात्त
५.	अनुदात्त	६.	अनुदात्तर	७.	अनुदात्तम ।[1]		

2.6.1 संगीत में सप्तक का विकास

❖ पायथागोरस का स्वर–सप्तक

मानव को सबसे पहले षड्ज–पंचम के कर्णप्रिय भाव का अनुभव हुआ । साथ ही साथ उसे यह भी विदित हुआ कि पंचम स्वर षड्ज स्वर का ड्योढ़ा है । तब यह विचार किया गया कि तार–षड्ज जिस स्वर का ड्योढ़ा है, वह कौन सा है । खोजने पर मालूम हुआ कि वह स्वर 'मध्यम' है । ऐसा होने पर मध्यम और पंचम स्वरों के बीच का नया अंतराल है, जो ४/८ है । अब मध्य–षड्ज से इसी अंतराल पर एक स्वर स्थापित किया, जिसे 'ऋषभ' कहा गया । ऐसा करने पर ज्ञात हुआ कि अभी ऋषभ और मध्यम के बीच में इतना अंतराल और शेष है, जितना षड्ज–ऋषभ या मध्यम–पंचम के बीच में है; और इस अंतराल पर एक स्वर भी स्थापित किया जा सकता है । अत: उस अंतराल पर 'रे' से आगे एक स्वर और स्थापित कर दिया गया, जिसे 'गांधार' कहा गया । अब गांधार और मध्यम के बीच में इतना अंतराल न बचा कि उस पर और कोई स्वर स्थापित किया जा सके ।

शोधकर्ताने शोध करने के बाद स्थिति पाई कि, मध्य–षड्ज से आगे हुई, वही पंचम से आगे भी हुई, अर्थात् पंचम स्वर से आगे तार–षड्ज तक के बीच में, मध्यम और पंचम स्वरों के अन्तराल की दूर पर क्रम से धैवत और इसी अन्तराल पर धैवत से आगे निषाद स्वर स्थापित किए गए ।

1. वीर, राम अवतार / भारतीय संगीत का इतिहास / पृ. 91

अब पुनः निषाद और तार-षड्ज के मध्य में बहुत थोड़ा अन्तराल बचा, अतः इसे भी ज्यों-का-त्यों छोड़ दिया गया । इस प्रकार जो सप्तक बना, उसमें षड्ज से ऋषभ, ऋषभ से गांधार, मध्यम से पंचम, पंचम से धैवत और धैवत से निषाद के बीच में अन्तराल एक-समान थे । गांधार और मध्यम तथा निषाद और तार-षड्ज के बीच में जो अन्तराल आया वह था थो बराबर, परन्तु पहले अन्तराल से छोटा था । इस प्रकार एक सप्तक में दो अन्तराल थे, एक बड़ा और दूसरा छोटा । गणित की दृष्टि से बड़ा अंतराल ९/८ था और छोटा २/२, ५/४, ६/३ । इसमें ९/८ अन्तराल को 'टोन' कहते हैं और २/२, ५/४, ६/३ को 'लीमा' । परन्तु पायथागोरस ने इसे 'हैमीटोन' कहा है । चूँकि इस सप्तक को बनाने का प्रयास यूनान के प्रसिद्ध विद्वान पायथागोरस ने किया था, अतः इसे 'पायथागोरियन स्केल' कहते हैं ।

❖ षड्ज-पंचम-भाव से सप्तक निर्माण

उपर्युक्त आधार पर जो सप्तक बना, उसके निषाद तथा गांधार स्वर 'हारमनी' की रचना करने में अधिक कर्णप्रिय न लगे । अतः सप्तक को किसी अन्य प्रकार से बनाने का प्रयत्न किया गया । इन परिस्थितियों में षड्ज-पंचम-भाव से सप्तक बनाने का प्रयास किया गया । इस आधार पर षड्ज का ड्योढ़ा पंचम निकाला । इसी पंचम को षड्ज माना और इसका ड्योढ़ा स्वर पंचम खोजा, जो ऋषभ आया । पुनः इस नवीन पंचम (अर्थात् ऋषभ) का ड्योढ़ा स्वर खोजा, जो धैवत आया । इसी प्रकार जो पंचम आता रहा, उसे षड्ज मानकर उनका पंचम खोजते चले आए । अतः जो सप्तक बना, उसमें अंतिम षड्ज के आंदोलन प्रारम्भिक षड्ज के ही आंदोलन के गुणान्तर नहीं थे, वरन् कुछ अधिक थे । देखने पर विदित हुआ कि जो अन्तराल बढ़कर आया था, वह गणित की दृष्टि से ८/८, १/० था । इस प्रकार यह सप्तक भी संतोषजनक न बना । [1]

❖ षड्ज-मध्यम-भाव के आधार पर सप्तक की रचना

जब षड्ज-पंचम-भाव से सप्तक न बन पाया, तो तार-षड्ज से पीछे की और पाँचवें स्वर अर्थात् मध्यम स्वर की ओर इसका मध्यम खोजा, तो निषाद प्राप्त हुआ । इसी प्रकार इस क्रिया को

1. वसंत / संगीत विशारद / पृ. 146

तबतक करते रहे, जबतक कि जिस आंदोलन–संख्या से चले थे, उसी के गुणांतर का कोई आंदोलन प्राप्त न हुआ । इस आधार पर जो सप्तक बना, उसमें अन्तिम षड्ज उस षड्ज से नीचा आया जो आना चाहिए था । फलस्वरूप यह सप्तक भी संतोषजनक न बना । हाँ, ऐसा करने पर एक बात अवश्य बिदित हो गई कि जितना अन्तराल षड्ज–पंचम–भाव के समय अन्तिम षड्ज के समय बढ़ा था, ठीक उतना ही अन्तराल अब षड्ज मध्यम–भाव से सप्तक बनाते समय कम हो गया । अर्थात् अबकी बार ८१/८० अन्तराल कम आया । इस अन्तराल को विद्वानों ने 'कॉमा' या 'प्रमाण श्रुति' कहा ।

❖ डायाटोनिक स्केल की रचना

क्योंकि अभी तक कोई संतोषजनक स्केल नहीं बन पाया था, अतः विद्वान् लोग उत्तम स्वर–सप्तक बनाने का बराबर प्रयत्न करते रहे । विचार करने पर यह अनुभव किया गया कि षड्ज, मध्यम और पंचम के अतिरिक्त यदि स्वरों को ४–५–६ के अनुपात में बजाएँ तो वे भी कर्णप्रिय लगते हैं । ऐसा करने पर जब षड्ज के इस अनुपात पर स्वर खोजे गए तो 'सा', 'ग' और 'प' प्राप्त हुए । पुनः मध्यम से ४–५–६ के अनुपात पर 'म', 'ध' और 'सां' प्राप्त हुए । इसी प्रकार पंचम से ४–५–६ के अनुपात पर 'प' एक सप्तक बन गया । इस सप्तक के स्वर बड़े मधुर थे । इसका नाम 'सच्चा स्वर सप्तक' या 'नेचुरल स्केल' रखा गया । इस सप्तक में तीन अंतराल प्राप्त हुए, जो क्रम से ९/८, १०/९ और १६/१५ थे । इनमें ९/८ और १०/९ अन्तरालों में बहुत न्यून अन्तर था, अतः इन्हें 'टोन' कहा गया, और १६/१५ को 'सेमीटोन' । इस सप्तक में केवल स्थूल रूप से 'टोन' और 'सेमीटोन' ये दो ही अंतराल होने के कारण इसे 'डाया' (अर्थात् दो का) टॉनिक (स्वरमाला) स्केल कहा गया ।

❖ सप्तक की बड़ी अड़चन

बैसे तो 'डायाटॉनिक स्केल' बड़ा उत्तम बन गया, किन्तु इस सप्तक में एक बड़ी अड़चन उत्पन्न हो गई कि जब तक हम षड्ज को ही अपना षड्ज मानकर गान–वादन करते हैं, तब तक तो हमें उस स्केल के सच्चे स्वर प्राप्त होते रहते हैं; परन्तु यदि कोई गायक या वादक षड्ज के अतिढ रिक्त किसी अन्य स्वर को अपना षड्ज मान लेता है, तो उसे 'डायाटॉनिक स्केल' के

सच्चे स्वर प्राप्त नहीं होते । यह सम्भव नहीं कि प्रत्येक व्यक्ति, वह चाहे मोटी आवाजवाला हो या पतली आवाजवाला, एक ही स्वर को षड्ज मानकर गान करे । अत: इसमें भी कमी दिखाई देने लगी ।

❖ औसत स्वरान्तर –सप्तक

उपर्युक्त कठिनाई को दूर करने के लिए यह सोचा गया कि यदि ९/८ और १०/९ अन्तरालों का, जोकि बड़े–बड़े हैं और जिनमें बहुत थोड़ा अन्तर है, औसत निकाल लिया जाए और इसी औरत स्वरांतर को ९/८ और १०/९ स्वरांतरों के स्थान पर रख दिया जाए तो समस्या हल हो जाएगी । ऐसा ही किया गया और इस प्रकार जो सप्तक बना, उसे 'औसत स्वरांतर–सप्तक' (Mean Tone Temperament Scale) कहा गया ।

❖ समानान्तरालीय स्वर–सप्तक

ऊपर बताए स्वर–सप्तकों के अतिरिक्त विद्वानों ने विचार किया कि षड्ज–पंचम–भाव और षड्ज–मध्यम–भाव के आधार से स्वर सप्तक बनाते समय जो अन्तराल बढ़ा या घटा था, उसे बारह स्वरों में बराबर बाँट दिया जाए तो इस सप्तक में जितना 'सा' से 'प' बेसुरा होगा, ठीक उतना ही 'रे' से 'ध' बेसुरा होगा । दूसरे शब्दों में 'सा' से 'रे॒' के बीच में जितना अन्तराल होगा, ठीक वही अन्तराल 'रे॒' और 'रे' के बीच में कर दिया । तात्पर्य यह है कि किसी भी एक स्वर से, उससे अगले या पिछले स्वर के अन्तराल को समान कर दिया, अर्थात् पूरे सप्तक की बराबर बारह भागों में विभाजित कर दिया और इस सप्तक को 'समानान्तरालीय स्वर–सप्तक' (Equally Temperament Scale) कहा गया ।**(1)**

अब तक हम अनेक स्वर–सप्तक देख चुके हैं, परन्तु अभी तक यह निश्चय नहीं कर सके कि किस स्वर–सप्तक को अपनाया जाए । इसका निश्चय करने से पूर्व हमें यह ध्यान रखना होगा कि हम उसी स्वर–सप्तक को अपना सकते हैं, जोकि 'डायाटॉनिक स्केल' या 'नेचुरल स्केल' के अधिक समीप हो । खोज करने पर ज्ञात हुआ कि 'समानान्तरालीय स्वर–सप्तक' (Equally

---

1. वसंत / संगीत विशारद / पृ. 148

Temperament Scale) 'डायाटॉनिक स्केल' के स्वरों के अधिक समीप है । अत: हमने अपना स्वर–सप्तक मान लिया । इसी स्वर–सप्तक के आधार पर समस्त पाश्चात्य वाद्य (प्यानी, गिटार, मेंडोलिन इत्यादि) बनाए गए हैं । वही स्वर हमें हारमोनियम में मिलते हैं । इस आधार पर निस्संकोच रूप से कहा जा सकता है कि यदि हम हारमोनियम के साथ गान–वादन करते हैं, तो वे समानान्तरालीय स्वर–सप्तक के ही स्वर हैं, न कि 'प्राकृतिक या 'नेचुरल स्केल' के ।

स्वरों के वर्गीकरण के विचार से सप्तक तीन प्रकार के होते है :–

(अ) स्वरित – मध्य सप्तक (Medium Octave)

(ब) उदात्त – तार सप्तक (Upper Octave)

(स) अनुदात्त – मन्द्र सप्तक (Lower Octave)

ऊँची ध्वनि उत्पन्न करने के लिए हमें कुछ दबाव डालना पड़ता है उसे ध्यान में रखकर ऋषियों ने सात स्वरों की निम्नलिखित तीन श्रेणियाँ निश्चित कीं । ये श्रेणियाँ उदात्त, अनुदात्त और स्वरित पर आधारित थीं :–

१. उदात्त – तार सप्तक

२. अनुदात्त – मन्द्र सप्तक

३. स्वरित – मध्य सप्तक

आर्य योगी प्राणायाम के समय अवरोह क्रम में तेज ध्वनि उत्पन्न करने के लिए अपनी नाभि पर जोर देकर सांस खींचा करते थे । वह ध्वनि बड़ी गम्भीर होती थी और बादल की गर्जन की तरह आवाज करती थी । इसे अतिमन्द्र सप्तक (Double Lower Octave) कहते थे । किन्तु सामान्य लोगों के लिए तीन ही सप्तक माने गये । ये तीन सप्तक थे – मध्य सप्तक, मन्द्र सप्तक और तार सप्तक ।[1]

मध्य सप्तक स्वरित स्वर के लिए, तार सप्तक उदात्त स्वर के लिए और मन्द्र सप्तक अनुदात्त स्वर के लिए प्रयोग किये जाते थे । प्रत्येक सप्तक अपने निचले सप्तक से ध्वनि की सघनता में दूना होता था अर्थात् यदि मंद्र सप्तक की मापक इकाई 1 है तो मध्य सप्तक की 2, और

1. वीर, राम अवतार / भारतीय संगीत का इतिहास / पृ. 87

तार सप्तक की 4 इकाइयाँ होंगी । सब बातों के उपरान्त सप्तक के तीन भेद किये जाते है :-

१. मन्द्र सप्तक २. मध्य सप्तक ३. तार सप्तक

मन्द्र सप्तक

ध्वनि जो कि सीने पर दबाव डालकर निकाली जाती है उसे मन्द्र सप्तक की ध्वनि कहते है उसे मध्य सप्तक की ध्वनि से नीची और हल्की होती है । इस सप्तक के स्वर है :-

स रे ग म प ध नी

स्वर के नीचे पड़ी रेखा उसकी प्रकार बताने के लिये प्रयोग की जाती है । आजकल स्वर का प्रकार बताने के लिये उसके नीचे बिन्दु लगाने का प्रचार है ।

मध्य सप्तक

कंठ पर बिना दबाव डाले जो सामान्य ध्वनि निकलती है उसे मध्य सप्तक की ध्वनि कहते हैं । इस सप्तक पर बजाने वाले स्वर हैं -

स, रे, ग, म, प, ध, नी,

इसका प्रकार बताने के लिए कोई भी चिन्ह नहीं लगाया जाता ।

तार सप्तक

जो ध्वनि कंठ पर काफी दबाव डाल कर निकाली जाती है उसे तार सप्तक ध्वनि कहते हैं। नीचे दिये गये स्वर जो कि उस ध्वनि में उच्चारित किये जाते हैं, तार सप्तक के स्वर हैं :-

। । । । । । ।
स, रे, ग, म, प, ध, नी,

इस सप्तक को प्रकट करने के लिए स्वर पर छोटी सी बड़ी रेखा खींच दी गई है । आजकल खड़ी रेखा के स्थान पर सप्तक प्रगट करने के लिए बिन्दु का प्रयोग किया जाता है । [1]

➢ सप्तक दो भागो में

जब पुरूष की 40 वर्ष की अवस्था में स स्वर स्थापित किया गया तो संगीतकारों के सामने एक कठिनाई आई । उदाहरण के लिए, 4स 3रे 2ग 4म के पश्चात 4 श्रुति का एक स्वर है

1. वीर, राम अवतार / भारतीय संगीत का इतिहास / पृ. 89

जो कि तार सप्तक का स स्वर भी है । इसे तीन श्रुति का स्वर बनाना कठिन था क्योंकि प्रथम सप्तक में प तीन श्रुति का था । पतंजलि के अनुसार चार श्रुति के स्वर के पीछे तीन श्रुति का स्वर लगाना चाहिये और तीन श्रुति स्वर के पीछे दो श्रुति आना चाहिये ।

इस कठिनाई को ध्यान में रखकर उस समय के संगीतकारों ने सप्तक को दो वर्गों में बांट दिया । ऐसा करने पर उन्होंने ऊपर बताई गई कठिनाई को दूर कर दिया । इसलिए तार सप्तक के स स्वर को दो सप्तकों के बीच लगा दिया ।

सात स्वरों के मेल को सप्तक कहते हैं । सप्तकों की उत्पत्ति स्वरों से, स्वरों की उत्पत्ति श्रुति से और श्रुति की उत्पत्ति नाद या ध्वनि से होती है ।

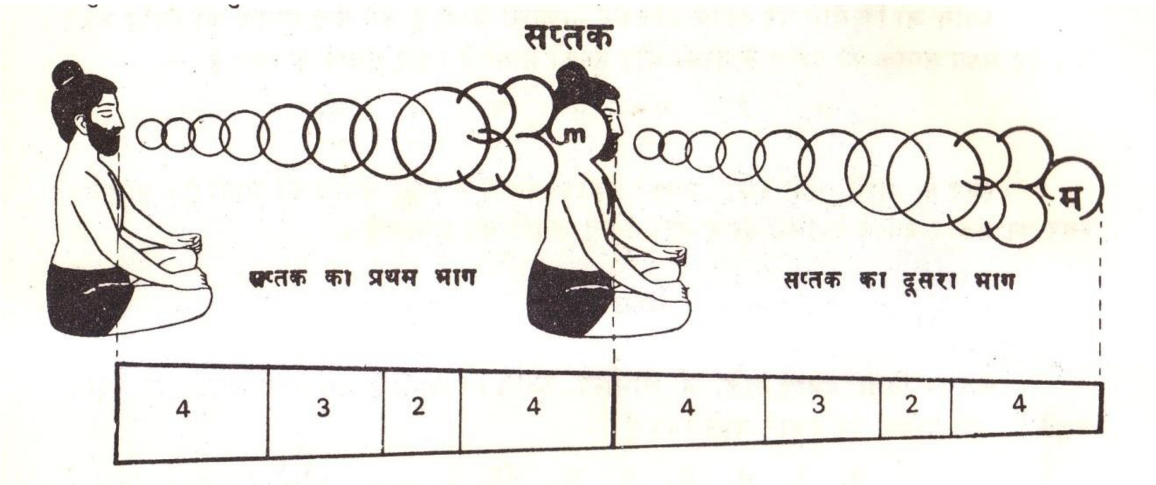

(1)

सप्तक के दो भाग किये गये हैं :-

(अ) स रे ग म, (ब) प ध नी स

यह विभाजन उस सिद्धांत पर निर्भर है जो कि तान स्वर के लिए लागू हुआ था । तान स्वर के विषय में ऋषि लोग पहले प्राण वायु को भीतर खींचते थे । फिर उसे यथा सम्भव रोकते और फिर निकाल देते थे । वे वायु को बाहर निकालते समय ओ.....३.....म् का उच्चारण करते थे । ऐसा करने के समय जब ओष्ठ बन्द होते हैं तो नथुनों से ध्वनि निलकती है । इसे म कहते हैं । पहला स्वर जो कि बाहर निकलता है चार श्रुति का होता है दूसरा तीन श्रुति का और तीसरा दो श्रुति का । किन्तु उस समय ओष्ठ बन्द होते हैं इसलिये 'म' ध्वनि जो कि नथुनों से निकलती है वह भी चार श्रुति की मानी जाती है । इससे सप्तक का प्रथम खण्ड 13 श्रुतियों का हो जाता है ।

1. वीर, राम अवतार / भारतीय संगीत का इतिहास / पृ. 166

दोहराने पर प्रथम और चतुर्थ स्वर चार–चार श्रुतियों के होते हैं । इससे कुल योग 13 श्रुतियों का होता है । ये 13 श्रुतियों के स्वर एक सांस में बनते हैं । स्वरों की आगे रचना के लिये इस क्रिया को एक बार फिर तेरहवीं श्रुति की ऊँचाई से साँस खींचकर और फिर वायु को धीरे–धीरे निकाल कर, दोहराया जाता है ।

दूसरी प्रकार की प्रक्रिया ठीक वही है जो कि सप्तक के प्रथम भाग में हुई थी । अर्थात् प्रथम स्वर 4 श्रुति का, द्वितीय स्वर 3 श्रुति का, तृतीय स्वर 2 श्रुति का और चतुर्थ स्वर म 4 श्रुति का होगा । किन्तु म के पीछे आने वाले स्वर को स रे ग म नहीं बोला जाता । इन स्वरों को प ध नी स के नाम से सम्बोधित किया जाता है और ये सप्तक के द्वितीय भाग के स्वर होते हैं ।

यदि हम सप्तक के दोनों भागों पर ध्यान दें तो मालूम होगा कि म प्रथम स्वर स के अनुकूल है । इस प्रकार सप्तक के दूसरे भाग के तार सप्तक का स स्वर, प के अनुकुल है ।

इसी प्रकार से दो स्वरों – स (C) तथा प (G) को अचल माना गया है । दूसरे शब्दों में कहा जा सकता है कि उन्हें कोमल (Halftone) अथवा तीव्र (Sharp) में नहीं बदला जा सकता । स सप्तक के प्रथम भाग की आरंम्भिक स्वर तथा प सप्तक के दूसरे भाग का आरम्भिक स्वर है ।

नवीन सप्तक की श्रुतियों का मूल्यांकन करना [1]

दो श्रुतियों का निम्नलिखित स्वरों में विलय हो गया –

4स 3रे 2ग 4म 4प 3ध 2नी

तार सप्तक (Upper Octave) के स्वर में नी की दो श्रुतियाँ जोड़ी गई । इस प्रकार सप्तक में 24 श्रुतियाँ हो गई । जब नी की दो श्रुतियाँ तार सप्तक में जोड़ दी गई तो सप्तक 26 श्रुतियों का हो गया । तार सप्तक का स, दोनों सप्तकों के बीच वाला सप्तक बन गया ।

सप्तक से पूर्वकालीन श्रुतियों की संख्या 22 थी । ध्वनि को निम्न प्रकार विभाजित किया गया । 100 ÷ 22 = 4.5 (लगभग) 25वीं श्रुति चार सप्तक में मिल गई । नये सप्तक के आधार पर श्रुति का मूल्य निकालने के लिए ध्वनि को निम्न प्रकार से बाँटा जाता है – 100 ÷ 25 = 4.

1. वीर, राम अवतार / भारतीय संगीत का इतिहास / पृ. 9